प्रस्तावना

ये संवाद मेरे भतीजे नीलकण्ठ मशरूवालाकी १९२१ से १९२५ के बीच लिखी गअी डायरीसे लिये गये हैं। अुसकी आयु भी अुस समय लगभग २१ से २५ वर्षके बीच ही थी। अुसी अरसेमें मेरे कारण वह पूज्य नाथजीके परिचयमें आया। अुस परिचयको अुसने श्रद्धासे बढ़ाया और पूज्य नाथजीने ममता और प्रेमसे अुसका पोषण किया।

सारे तरुणोंकी तरह नीलकण्ठका भी वह समय विविध आदर्शोंके बीच पसन्दगी करनेका, सामंजस्य स्थापित करनेका तथा कुछ 'अद्‌भुत' कार्य कर डालनेकी अभिलाषासे अुत्पन्न होनेवाले मानसिक संघर्षोंका था। जिस आयुमें कविता न करे अैसे तरुण विरले ही होते हैं। नीलकण्ठने कवीन्द्र रवीन्द्रके चरणोंमें बैठकर साहित्य, कविता, कला, सौन्दर्य आदिकी रुचिका अच्छा विकास किया था। अुन्हींके द्वारा अुसने बुद्ध, रामकृष्ण परमहंस जैसे संतों तथा ज्ञानेश्वर, तुकाराम जैसे प्राचीन और नारायण वामन तिलक जैसे आधुनिक महाराष्ट्रीय सन्त कवियोंके साहित्यका भी रसपान किया था। अुसमें राष्ट्रीयताके संस्कार पड़ें, अिसमें कोअी आश्चर्य हो ही कैसे सकता है? और व्यापारिक वृत्ति तो अुसके खूनमें ही थी। अिसके साथ बढ़नेवाली युवावस्थाके अनुरूप संसाररस बढ़ानेका काम कुदरत करती ही थी। अिस प्रकार ललित कलाके संस्कार, अुनसे अुलटे निवृत्ति, वैराग्य, सर्वमिथ्या, आत्मसाक्षात्कार आदिके संस्कार तथा अिन दोनोंसे भिन्न प्रकारके संस्कार जोर करते थे। मन पर पड़े हुअे विविध संस्कारोंका यह मिश्रण कैसी परेशानी खड़ी करता है, जिसका परिचय अुन लोगोंको करानेकी आवश्यकता नहीं जो अुस आयुको पार कर चुके हैं।

प्रस्तावना

ये संवाद मेरे भतीजे नीलकण्ठ मशरूवालाकी १९२१ से १९२५ के बीच लिखी गअी डायरीमें लिये गये हैं। अुनकी आयु भी अुस समय लगभग २१ से २५ वर्षके बीच ही थी। अुसी अरसेमें मेरे कारण वह पूज्य नाथजीके परिचयमें आया। अुस परिचयको अुसने श्रद्धासे बढ़ाया और पूज्य नाथजीने ममता और प्रेमसे अुसका पोषण किया।

सारे तरुणोंकी तरह नीलकण्ठका भी वह समय विविध आदर्शोंके बीच पसन्दगी करनेका, सामंजस्य स्थापित करनेका तथा कुछ 'अद्‌भुत' कार्य कर डालनेकी अभिलाषासे अुत्पन्न होनेवाले मानसिक संघर्षोंका था। अिस आयुमें कविता न करे असे तरुण विरले ही होते हैं। नीलकण्ठने काकासाहबके चरणोंमें बैठकर साहित्य, कविता, कला, सौन्दर्य आदिकी रुचिका अच्छा विकास किया था। अुन्हींके द्वारा अुसने बुद्ध, रामकृष्ण परमहंस जैसे संतों तथा ज्ञानेश्वर, तुकाराम जैसे प्राचीन और नारायण वामन तिलक जैसे आधुनिक महाराष्ट्रीय संत कवियोंके साहित्यका भी रसपान किया था। अुसमें राष्ट्रीयताके संस्कार पड़ें, अिसमें कोअी आश्चर्य हो ही कैसे सकता है? और व्यापारिक वृत्ति तो अुसके खूनमें ही थी। अिसके साथ बढ़नेवाली युवावस्थाके अनुरूप शृंगाररस बढ़ानेका काम अुद्दाम करती ही थी। अिस प्रकार ललित कलाके संस्कार, अुनसे अुलटे निवृत्ति, वैराग्य, सर्वमिथ्या, आत्म-साक्षात्कार आदिके संस्कार तथा अिन दोनोंसे भिन्न प्रकारके संस्कार जोर करते थे। मन पर पड़े हुअे विविध संस्कारोंका यह मिश्रण कैसी परेशानी खड़ी करता है, जिसका परिचय अुन लोगोंको करानेकी आवश्यकता नहीं जो अुस आयुको पार कर चुके हैं।

अैसे ही समय यदि तरुणोंको कोअी विवेकयुक्त मार्गदर्शक मिल जाय तो अुनका मार्ग सरल हो जाता है और अुनके जीवनमें स्थिरता आ जाती है। नीलकण्ठके सद्भाग्यसे अैसे समय अुसे नाथजी मिल गये।

नीलकण्ठकी अच्छे साहित्य और कलाकी रुचि अभी तक वैसी ही बनी हुअी है। परतु स्वयं साहित्य रचने अथवा कलाकार बननेकी रुचि कायम नहीं रही। अुस आयुमें अुसने अेक-दो पुस्तकोंके अनुवाद किये थे, जो प्रकाशित हुअे हैं। थोड़े समय तक दर्शन देकर लुप्त हो गअी अुस वृत्तिके प्रभावसे नीलकण्ठने अुस समय पूज्य नाथजीके साथ हुअे अपने परिचय और संवादोंके कुछ नोट भी ले रखे थे। मैं और श्री रमणीकलाल मोदी पूज्य नाथजीके साहित्यका संपादन करनेका विचार कर रहे थे, अुस समय नीलकण्ठने वह सामग्री मेरे पास भेज दी। पढ़ने पर वह हमें अुपयोगी मालूम हुअी। यह छोटीसी पुस्तिका अुस डायरीके ही पृष्ठोंका परिणाम है। अिसमें से पूज्य नाथजीसे सबंध रखनेवाले कुछ भावनापूर्ण अुद्‌गार और कुछ बहुत व्यक्तिगत प्रसंग अुन्होंने निकलवा दिये हैं। अुसके सिवा, सारी डायरी लगभग मूलरूपमें ही दी गअी है। मेरी श्रद्धा है कि पाठकोंको भी यह पसन्द आयेगी और अुपयोगी मालूम होगी।

वर्धा, ८–६–'५१ किशोरलाल घ० मशरूवाला

अनुक्रमणिका

सुसंवाद

१

केश और वेष

अेक दिन पूज्य नाथजी बाल कटवा रहे थे। अुस समय मेरे सिरके बहुत बढे हुअे बालों * को देख कर अुन्होंने मुझसे पूछा: "क्यों, तुम भी अपने बाल कटवाओगे न? कितनी बडी जटा बढा ली है?" अुनकी आवाजने ही मुझे वशमें कर लिया और मैं बोला "आप कहेंगे वैसा ही करूंगा।" अुन्होंने मुझसे पूछा. "तुमने किस अुद्देश्यसे अितने बडे बाल बढ़ा लिये हैं?" मैंने कहा "साधु-सन्त और साधक बढ़ाते हैं, अिसलिअे मैंने भी बढा लिये हैं। मुझे वे भूषण मालूम होते हैं। मैं कंघी वगैरा नहीं करता, क्योंकि मैंने सुन्दर दीखनेके लिअे शौकसे ये बाल नहीं बढाये है। फिर भी आप कहते हैं तो मैं कटवा लेता हूं, क्योंकि आपके अिस प्रश्नमें मुझे कुछ विशेष अर्थ मालूम होता है।"

---

* मैंने हिमालयकी और वहांके साधु-सन्तोंकी बहुतसी बातें सुनी थीं। अुन परसे मुझे लगता था कि हिमालयमें गये बिना मुक्ति या शान्ति नहीं मिल सकती। मेरा बाहरी वेष भी वैसा ही था। लम्बे बढ़ाये हुअे बाल, भगवी या सफेद कफनी तथा टोपीका त्याग! अितना करके मुझे लगता था कि मैं मुक्ति प्राप्त कर लूंगा?

वे बोले : "तुम क्या, अैसे भ्रममें तो बड़े बड़े लोग भी फंस जाते हैं! परन्तु जटा अिस मार्गका साधन नहीं है। यह दूसरी बात है कि साधक जब अेकान्तमें रहता है तब कोअी चारा न होनेसे अुसके बाल बढ जाते हैं। वैसे यह सब व्यर्थकी मान्यता है। अिसके बजाय तो बालोंमें कंघी करना, अुन्हें ठीकसे सवारना अधिक अच्छा है। अुसमें रजोगुण होते हुअे भी व्यवस्थितता तो है! परन्तु यह तो निरा तमोगुण, जंगलीपन है। रजोगुणी शौकका आनन्द भी हमें मनुष्यत्वके अुत्कर्षकी ओर ले जानेमें अुपयोगी सिद्ध नहीं होता। सच्चा मनुष्यत्व — मनुष्यका सच्चा विकास तो अुसमें है ही नहीं। सच्चा विकास तो सात्त्विक वृत्तिसे कार्य करनेकी शक्ति प्राप्त करनेमें ही है

मैंने बाल कटवा डाले तब वे बोले : "देखो, अब कैसा अच्छा लगता है! है कोअी पीड़ा? अब समझमें आ गया न कि विलास अथवा तमोगुणमें विकास नहीं है? सद्‌गुण ही मनुष्यकी शोभा बढ़ाते हैं, जटा या बाल नहीं।"

२

संसार और संन्यास

मेरा और पूज्य माधजीका परिचय अब कुछ बढ गया था। मैंने अपने मनका मन्थन और भ्रम अुनके सामने रखा। मैंने कहा "नाथजी, मेरा मन भारी भ्रममें पड गया है। मुझे लगता है कि सब कुछ छोड कर कहीं भाग जाअूं। यदि मैं जगतके जंजालमें फंस गया तो फिर मेरे लिअे अुन्नतिकी आशा रखना व्यर्थ होगा। और मुक्ति मिलनेकी आशा रखना तो निरा भ्रम ही होगा।"

अुन्होंने अुत्तर दिया "घर छोड कर कहीं भाग जानेसे तुम्हारी जरा भी अुन्नति नहीं होगी। अुन्नति साधनेका क्षेत्र तो घर ही है। यदि तुम अैसा मानते हो कि संसारके साथ सम्बन्ध न रखनेवाले साधुओं या वैरागियोंने अुन्नति साध ली है, तो तुम्हारी यह मान्यता गलत है। मेरा तो यह दृढ मत है कि कृत्रिम ढंगसे कोअी अुन्नतिके मार्ग पर चढ ही नहीं सकता। जिस मनुष्यने शुभ गुणोंका अुत्कर्ष करके अुन्हें बढाया है, वही स्वाभाविक रूपमें अुन्नति साध सकता है। जब तक तुममें शुभ गुणोंका विकास नहीं होता, तब तक आग्रहपूर्वक समाज छोड़ देनेसे तुम्हें कुछ मिलनेवाला नहीं है। मुझे तो लगता है कि अैसा करनेसे या तो तुम प्रमादी बन जाओगे अथवा लोगोंमें

थोड़ी बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त कर लोगे। परन्तु अुससे तुम्हारा अुत्कर्ष या अुन्नति नही हो सकती।"

मैंने कहा "परन्तु शास्त्र तो यह कहते हैं कि मनुष्यको निर्गुण अवस्था प्राप्त करनी चाहिये, जब कि आप गुणविकास पर जोर देकर अुसका आग्रह रखते हैं दोनोंमें से कौनसी बात ठीक है, यह मैं समझ नही पाता।"

नाथजी बोले : "निर्गुण अवस्था प्राप्त करनेकी बात शास्त्रोंमें कही गयी है, परन्तु इस विषयमे शास्त्रोंका विचार समझनेमें शायद हमारी भूल होती है। मेरा कहना यह है कि सद्‌गुणोंका पूर्ण विकास करके, अुनका अहंकार न हो अैसी स्थिति प्राप्त करनेकी दिशामे मनुष्यका प्रयत्न होना चाहिये। बालक जब पहले-पहल पढ़ना सीखता है तब उसे अिसका अभिमान होता है। परन्तु जब अुसे अच्छी तरह पढना आ जाता है, और पढ़नेकी क्रिया अुसके लिअे बिलकुल स्वाभाविक हो जाती है, तब अुसे अिस विषयमे पहले जैसा अभिमान नही मालूम होता। अुसी प्रकार सद्‌गुणोंका पूर्ण विकास करनेके बाद जब वे हमारा स्वभाव बन जाते हैं, तब अुनके विषयमे हमें अभिमान नही लगता। यही सच्ची गुणातीत अवस्था है। सद्‌गुणोंका पूर्ण विकास किये बिना मनुष्यका निर्गुण बननेका प्रयत्न क्या बड़ी भूल नही है? तुम अिस पर विचार करो।"

"अच्छा। वे कौनसे गुण हैं, जिनका मनुष्यको [illegible]में विकास करना चाहिये?"

"दया, क्षमा, मैत्री, अुदारता आदि शुभ गुण।"

"तब तो भगवान बुद्धकी कही हुअी पारमितायें* सिद्ध करके आगे बढ़ना चाहिये?"

"ठीक है।"

"अिन दस पारमिताओंको सिद्ध करनेके बाद भी सत्त्व, रज और तम अिन तीन गुणोंका कुछ अुसमें तो अस्तित्व रहता ही है न? यह अस्तित्व — ये तीन गुण क्या मनुष्यको अस्थिर नहीं बना सकते?"

"जब तक यह शरीर है, तब तक कम-अधिक मात्रामें ये तीन गुण रहने ही वाले हैं। अिस विषयमें अितना ही कहा जा सकता है कि मनुष्यकी सारी क्रियायें अुस समय सत्त्वगुणके आधार पर चलती रहेंगी। सत्त्वगुणके साथ वह अितना समरस हो गया होगा कि वह गुण अुसका स्वभाव ही बन जायगा। सारांश यह कि अैसा मनुष्य किसी भी गुणमें आसक्त नहीं होगा, किसी भी गुणके बन्धनमें नहीं रहेगा।"

"यह स्थिति सिद्ध करनेके लिअे संसारमें रहना आवश्यक है, यह मैं समझ गया। और अैसा समझकर जो संसारमें रहे अुसे साधक ही समझना चाहिये। केवल अुसे अपने अुपभोगके लिअे किसीसे सेवा नहीं लेनी चाहिये। अिसके विपरीत, अुसे सबकी सेवामें मग्न रहना चाहिये।

* दान, शील, नैष्कर्म्य, प्रज्ञा, वीर्य, शान्ति, सत्य, अधिष्ठान, मैत्री और अुपेक्षा — अिन्हें बौद्धधर्ममें पारमितायें कहा गया है। गीताकी भाषामें कहा जाय तो १६ वें अध्यायमें बताअी गअी दैवी सम्पत्ति।

सेवा करनेमें ही अुसे आनन्द अनुभव होना चाहिये, सेवा करानेमें नहीं। परन्तु संसारमें रह कर बार-बार आनन्द, अुत्सव आदिमें भाग लेना पड़ता है। अैसे समय अुसे क्या करना चाहिये? क्या अुसे अिन सब बातोंसे दूर रहना चाहिये?"

"क्या तुम यह समझते हो कि आनन्दमात्र दोषरूप अथवा पापरूप है? अैसा हो तो तुम्हारी भूल है। आनन्द और अुत्सवमें भाग लेनेसे हमारी मनोवृत्ति मलिन और हीन बनती हो तो हमें अुनमें भाग नहीं लेना चाहिये। आनन्दमें भी सात्त्विक, राजस, तामसके भेद किये जा सकते हैं। जो आनन्द हमने सात्त्विक साधनों और सात्त्विक मार्गोंसे प्राप्त किया हो और जिस आनन्दसे हमारे भीतर किसी प्रकारकी हीन वृत्ति अुत्पन्न नहीं होती, बल्कि हमारा मन अधिकाधिक प्रसन्न बनता है और हममें सत्कर्मकी अिच्छा तथा अुत्साह अुत्पन्न होता है, अुसे सात्त्विक आनन्द कहनेमें कोअी हर्ज नहीं। परन्तु जो आनन्द हीन अुपायोंसे प्राप्त किया गया है और जिससे मनुष्यका मन अुत्तरोत्तर हीन दशाको पहुंच कर बुरे और अवनतिकारक कर्मोंकी तरफ मुड़ता है, वह आनन्द राजस-तामस प्रकारका है। हमें शुद्ध आनन्दकी अिच्छा करनी चाहिये। वह कैसे प्राप्त हो सकता है, अिसका विचार करना चाहिये। आनन्दका परिणाम शरीर, मन और बुद्धि पर अनेक प्रकारसे अिष्ट होना चाहिये। अनिष्ट तो कभी होना ही नहीं चाहिये। अुससे शरीरकी नीरोगता बढ़नी चाहिये।

वुद्धिके सूक्ष्म, प्रखर और व्यापक बननेमे अुससे सहायता मिलनी चाहिये और मनकी पवित्रता बढ़नी चाहिये । अिस प्रकारके आनन्द हमे खोज निकालने चाहिये । प्रत्येक आनन्दमे से हमे सभी गुण प्राप्त होगे, अैसी बात नही है । परन्तु आनन्दके साथ ही कुछ सात्त्विक लाभ प्राप्त करनेकी हमारी दृष्टि होनी चाहिये । मानव जीवनमें आनन्दका होना बहुत जरूरी है । जीवनमें से आनन्दको निकाल दे तो वह गूगा, नीरस और अरुचिकर बन जायगा । तब प्रश्न अितना ही रह जाता है कि हम सात्त्विक आनन्द कैसे प्राप्त कर सकते है ? वैयक्तिक आनन्दकी तरह ही हमारे लिअे सामुदायिक आनन्दकी भी आवश्यकता है । और सामुदायिक आनन्दके लिअे आनन्दके अुत्सवो जैसे आयोजन होने चाहिये । निराशा, थकावट, बेचैनी, अुदासीनता आदिको दूर करके हमारे जीवनमें आशा और अुत्साहका सचार करके नया चैतन्य, नया जीवन पूरनेके लिअे अैसे आनन्दकी बडी आवश्यकता है । अुत्सवोसे हममें प्रेम, मैत्री, अुदारता, सामुदायिक सद्गुणो और अैक्यकी वृद्धि होनी है । हमें अिस बात पर ध्यान देना चाहिये कि हम किस तरहमे आनन्द प्राप्त करते है और *अुस आनन्दका परिणाम* हम पर और *समाज पर* क्या होता है । आनन्दकी प्राप्तिमें हमारा अपना या दूसरे किसीका अहित नही होना चाहिये । हमारे आनन्दसे दूसरोंको भी आनन्दकी प्राप्ति होनी चाहिये और सबके आनन्दका पर्यवसान सत्कर्ममे होना चाहिये । हमारा यह आग्रह है कि

सेवा करनेमे ही अुसे आनन्द अनुभव होना चाहिये, सेवा करानेमे नही। परन्तु ससारमे रह कर वार-वार आनन्द, अुत्सव आदिमे भाग लेना पडता है। अैसे समय अुसे क्या करना चाहिये? क्या अुसे अिन सव वातोंसे दूर रहना चाहिये?"

"क्या तुम यह समझते हो कि आनन्दमात्र दोषरूप अथवा पापरूप है? अैसा हो तो तुम्हारी भूल है आनन्द और अुत्सवमे भाग लेनेसे हमारी मनोवृत्ति मलि. और हीन वनती हो तो हमे अुनमें भाग नही लेना चाहिये। आनन्दमे भी सात्त्विक, राजस, तामसके भेद किये जा सकते है। जो आनन्द हमने सात्त्विक साधनों और सात्त्विक मार्गसे प्राप्त किया हो और जिस आनन्दसे हमारे भीतर किसी प्रकारकी हीन वृत्ति अुत्पन्न नही होती, वल्कि हमारा मन अधिकाधिक प्रसन्न बनता है और हममें सत्कर्मकी अिच्छा तथा अुत्साह अुत्पन्न होता है, अुसे सात्त्विक आनन्द कहनेमे कोअी हर्ज नही। परन्तु जो आनन्द हीन अुपायोंसे प्राप्त किया गया है और जिससे मनुष्यका मन अुत्तरोत्तर हीन दशाको पहुच कर वुरे और अवनति-कारक कर्मोकी तरफ मुडता है, वह आनन्द राजस-तामस प्रकारका है। हमें शुद्ध आनन्दकी अिच्छा करनी चाहिये वह कैसे प्राप्त हो सकता है, अिसका विचार करना चाहिये आनन्दका परिणाम शरीर, मन और वुद्धि पर अनेक प्रकारसे अिष्ट होना चाहिये। अनिष्ट तो कभी होना ही नही चाहिये। अुससे शरीरकी नीरोगता वढ़नी चाहिये

बुद्धिके सूक्ष्म, प्रखर और व्यापक बननेमें अुससे सहायता मिलनी चाहिये और मनकी पवित्रता बढनी चाहिये। अिस प्रकारके आनन्द हमें खोज निकालने चाहिये। प्रत्येक आनन्दमें से हमें सभी गुण प्राप्त होंगे, अैसी बात नहीं है। परन्तु आनन्दके साथ ही कुछ सात्त्विक लाभ प्राप्त करनेकी हमारी दृष्टि होनी चाहिये। मानव जीवनमें आनन्दका होना बहुत जरूरी है। जीवनमें से आनन्दको निकाल दें तो वह सूखा, नीरस और अरुचिकर बन जायगा। तब प्रश्न अितना ही रह जाता है कि हम सात्त्विक आनन्द कैसे प्राप्त कर सकते हैं? वैयक्तिक आनन्दकी तरह ही हमारे लिअे सामुदायिक आनन्दकी भी आवश्यकता है। और सामुदायिक आनन्दके लिअे आनन्दके अुत्सवों जैसे आयोजन होने चाहिये। निराशा, थकावट, बेचैनी, अुदासीनता आदिको दूर करके हमारे जीवनमें आशा और अुत्साहका सचार करके नया चैतन्य, नया जीवन पूरनेके लिअे अैसे आनन्दकी बडी आवश्यकता है। अुत्सवोंसे हममें प्रेम, मैत्री, अुदारता, सामुदायिक सद्‌गुणों और अैक्यकी वृद्धि होती है। हमें अिस बात पर ध्यान देना चाहिये कि हम किस तरहसे आनन्द प्राप्त करते हैं और अुस आनन्दका परिणाम हम पर और समाज पर क्या होता है। आनन्दकी प्राप्तिमें हमारा अपना या दूसरे किसीका अहित नहीं होना चाहिये। हमारे आनन्दसे दूसरोंको भी आनन्दकी प्राप्ति होनी चाहिये और सबके आनन्दका पर्यवसान सत्कर्ममें होना चाहिये। हमारा यह आग्रह है कि

सृष्टिकी प्रत्येक वस्तुका सदुपयोग होना चाहिये। यही आग्रह हमारा अपने आनन्दके विषयमें भी होना चाहिये। हमारे मनमें अैसी दृढ अिच्छा तो होनी ही चाहिये। अिस अुद्देश्यकी पूर्ति हमारे विवेक और योजना-शक्ति पर निर्भर करती है। किसी भी आनन्दका निर्माण हमारे हृदयमें से ही होता है; बाह्य वस्तु, प्रसंग और परिस्थितिया तो निमित्तमात्र है। फिर भी ये निमित्त शुद्ध होने चाहिये। आनन्दका निर्माण हृदयमें से होते हुअे भी अुसका निमित्त बननेवाली शुद्ध-अशुद्ध वस्तु, प्रसग और परिस्थितियोंके शुद्ध-अशुद्ध परिणाम हमारे चित्त पर हुअे विना नही रहते। अतः अिस विषयमें मनुष्यको बहुत सावधान और विवेकी रहना चाहिये।"

३
ज्ञानी और कोमलता

आश्रममें अेक बालिका बीमारीके कारण अतिशय पीड़ा भोग रही थी। जब जब हमें अुसके समाचार प्राप्त होते, तब तब हमारी ही तरह पूज्य नाथजीको भी बड़ा दुःख होता था। अिस पर मैंने अेक बार अुनसे पूछा: "नाथजी, अुस बालिकाके दुःखकी बात सुनकर हमें दुःख हो यह तो बिलकुल स्वाभाविक है। परन्तु आपको दुःख ... चाहिये? आप तो सुख-दुःखसे परे है?"

...ले: "क्या मैं तुम्हें पत्थर जैसा जड़ अथवा ... हुआ लगता हूं? विचारशील मनुष्यके लिअे

असा समझना ठीक नहीं। यदि तुम मानते हो — तुम्हारी श्रद्धा हो — कि मैं विचारशील हूं, तो मैं निष्ठुर कैसे हो सकता हूं? यह मान्यता भी हमारे लोगोंमें चली आओी अक भूल है। जब सामान्य मनुष्यका मन भी कोमल होता है, तब फिर जिसने विचार करके अपने मनको अधिक अुदात्त बनाया है, अुसके मनकी कोमलता नष्ट हो जाय और वह निष्ठुर बन जाय असका भला क्या कारण हो सकता है? अतः मनुष्य ज्ञानी हो या न हो, अुसके मनमें कोमलता और दुःखियोंके प्रति सहानुभूति होनी ही चाहिये। दुःखी मनुष्य दुःखसे मुक्त हो, असके लिअे विचारशील मनुष्यको चाहिये कि वह प्रतिक्षण संकल्प, अुपाय और चिन्ता करता रहे और दुःखीको बार बार धैर्य बधाता रहे। साधारण मनुष्यकी अपेक्षा अुसकी विशेषता यही होगी कि वह दुःखसे घबरायेगा नहीं, कष्टोंमें अुद्विग्न नहीं होगा और कोओी अनुचित कार्य नहीं करेगा। दुःखके अवसर पर साधारण मनुष्य घबरा जाता है और दुःख दूर करनेका कोओी अुपाय नहीं करता, जब कि विचारशील मनुष्य अुसका दुःख दूर करनेका सतत प्रयत्न करता है। प्रयत्नमें असफलता मिलने पर साधारण मनुष्य दुःखी होते हैं। परन्तु शान्त, धीर और अुदात्त पुरुष असे समय अुसमें विश्वका नियम, अीश्वरकी अिच्छा समझकर व्याकुल नहीं होता, और विचारपूर्वक सुख-दुःखसे अलिप्त रहता है। यही अुसकी विशेषता है।"

४

कर्मपरायणता और प्रसन्नता

मेरी असावधानता तथा कर्म करने और कर्ममें लगनेकी अरुचिको देख पूज्य नाथजी यह सोचने लगे थे कि मुझे कर्ममें प्रवृत्त करना चाहिये, वर्ना मेरे कर्तृत्वका नाश हो जायगा। आखिर अेक दिन शामको अुन्होंने मुझसे कहा: "तुममें रजोगुण (कर्मकी प्रेरणा देनेवाला गुण) बहुत कम है। परन्तु हमें कर्म करनेके लिअे अितना तत्पर रहना चाहिये कि कोअी कर्म सामने आया कि अुसे कर डाला। न हो वहां भी कार्य खोज निकालना चाहिये और निर्दोषतासे तथा व्यवस्थित रूपमें अुसे कर डालना चाहिये। कोअी कार्य न हो — न सूझे तो घरकी सफाअी करने या चीजें व्यवस्थित ढंगसे जमानेमें समय लगाना चाहिये। परन्तु योग्य कर्मके बिना कभी रहना नहीं चाहिये, क्योंकि कर्म ही शरीर और मनका व्यायाम है।"

मैंने कहा: "कर्म करनेसे मैं अिनकार नहीं करता। लेकिन क्या कार्य किया जाय, यह मुझे आसानीसे सूझता नहीं।"

अुन्होंने अुत्तर दिया: "हममें कर्म करनेकी वृत्ति ही बहुत कम हो गअी है। वर्ना हम कहींसे भी काम खोज लें, अुसके लिअे प्रयत्न करें, परन्तु निठल्ले और [illegible] अेक क्षण भी नहीं बैठें।"

अमलमें मैं चिन्ताग्रस्त और व्याकुल रहता था, जिसमे नाथजीको दुःख होता था। अुन्होंने मुझे शान्त किया और कहा "तुम्हारे सम्बन्धमें आनेके बाद तुम्हे कर्ममें प्रवृत्त करना मैं अपना धर्म मानता हू। तुम परेशान या व्याकुल मत होओ। जब तक कोअी स्थायी कार्य करनेके लिअे नही मिलता, तब तक तुम अपना शरीर सुधारनेका प्रयत्न करो। छोटा बडा जो भी काम मिल जाय अुमे करने लगो और मनको सदा प्रसन्न रखो। 'मना करा रे प्रसन्न! सर्व सिद्धीचे कारण', योग्य कार्यमें लगे रह कर मनको प्रसन्न रखना सीखा जा सके तो जीवनकी सारी सिद्धिया तुम प्राप्त कर सकते हो।"

नाथजीके अिस कथनसे मैं तुरन्त सावधान बन कर शान्त हो गया। और बोला, "नाथजी, आप जरा भी दुःखी न हो, न मेरे लिअे कोअी चिन्ता करे। मैं आपकी आज्ञानुसार आचरण करनेका अवश्य प्रयत्न करूगा और सदा प्रसन्न रहूगा।" मैंने अुनके आशीर्वाद लिये और सोनेकी तैयारी करने लगा।

५

विद्यार्थियोंका धर्म

अेक दिन शामको मेरी प्रेरणासे आश्रमके कुछ विद्यार्थी मेरे साथ आकर नाथजीके आसपास बैठ गये। अुन्होंने सबसे पूछा : "क्यों, आनन्दमें हो न?"

अेक विद्यार्थीने कहा : "जी हां। दो शब्द अुपदेशके आपसे सुननेकी हमारी अिच्छा है।"

नाथजी : "तुम लोग खूब खेलो-कूदो, आनन्दमें रहो और पढ़ो। अिस समय तुम्हारा यही धर्म है। दूसरी गभीर बातोंमें पड़नेकी तुम्हें अिस अुम्रमें जरूरत नहीं है। और कुछ पूछना है?"

विद्यार्थी "जी हा। सब लोग कहते हैं कि आप आत्मदर्शन कराते हैं। आत्मदर्शनका क्या अर्थ है?"

नाथजी · "यह तो तुमने सबसे गंभीर बात निकाली। अिसके लिअे पहले तुम्हें योग्यता प्राप्त करनी होगी। यह योग्यता स्वधर्मका आचरण करनेसे ही प्राप्त होती है। अिस समय तो तुम्हारा धर्म पढना, खेलना और आनन्दमें रहना ही है। तुमसे जो बडे हैं, अुनका धर्म अिससे भिन्न है। योग्य समय पर तुम्हें आत्माका भान होगा। अिस समय तो तुम अितना ही ध्यानमें रखो कि जो शक्ति तुम्हारे गहरे अन्तरमें से तुम्हें सत्कर्म करनेको कहती है, आलस्य छोडनेको कहती है, वही शक्ति सब कुछ है।"

अुस विद्यार्थीने नाथजीको प्रणाम किया और हंस कर मानो सन्तोष प्रकट करता हुआ अन्य विद्यार्थियोंके साथ खेलने चला गया।

विद्यार्थियोंके जानेके बाद नाथजी मुझसे कहने लगे "अैसे विचारों अथवा अैसे प्रश्नोंकी परम्परा क्या बडे लोग ही कोमल चित्तमें नही भरते? वर्ना अनेक प्रकारके विनोदोंमें मग्न रहनेवाले, निर्दोष खेल खेलनेवाले विद्यार्थियोंको ये प्रश्न कैसे सूझ सकते हैं? आत्मविचार हृदयके भीतरसे स्फुरित होना चाहिये। यह प्रश्न दूसरोंके सुझानेका नही है। अपने हृदयमें स्फुरित हो, तब अुसका समाधान भी होगा। जितनी जिज्ञासा, अुतनी ही अुसकी पूर्ति। साधारण मनुष्य-समाजके लिअे तो अितना समझ लेना काफी है. 'मन, वाणी और कर्मसे शुद्ध रहो, नीरोग रहो, सदाचारी रहो। अिसीमें मनुष्यका पूर्ण विकास है। अिससे शान्तिका या जो कुछ भी होगा अुसका अनुभव होगा।' सृष्टिके और स्वयं अपने मूल तत्त्वकी शोध — यह ज्ञानका महान विषय है। परन्तु जिन्हें अुसकी जिज्ञासा है, अुन्हींके लिअे वह है, सबके लिअे नहीं।"

६

संसार और जीवनको देखनेकी सही दृष्टि

अेक ग्रामको पूज्य नाथजी और मैं बैठे थे। अनेक विषयों पर बातें हुअी। वे बोले: "युरोपके लोग बड़े अुद्यमी हैं। अुनमें कितना अुत्साह है? नअी नअी शोधें, नअी विद्याओं और नये शास्त्रोंका विचार वे करते ही रहते हैं। हम 'आसुरी, आसुरी' कह कर अुनकी प्रवृत्तिकी निन्दा करते हैं, परन्तु क्या हमारी आजकी निवृत्ति भी आसुरी नहीं है? हमारे देशमें कौनसा काम विचारके साथ होता है? हम विचारपूर्वक अुद्योगी बनें, ज्ञानपूर्वक अपनी आवश्यकतायें कम करें, तो अुसे सात्त्विक त्याग कहा जा सकता है। आज हमें सारे सुख और मौज-शौक तो चाहिये, परन्तु हम चाहते हैं कि अुनके लिअे आवश्यक सारा परिश्रम तथा विद्या, कला और शास्त्रोंकी शोध दूसरे लोग करें। हमारे बैरागियो, साधुओं, धर्माचार्यों आदि सबकी यही वृत्ति होती है। पश्चिमके लोग सुख भोगना चाहते हैं, परन्तु अुसके लिअे आवश्यक ज्ञान, विज्ञान और कलाकी प्राप्तिका प्रयत्न भी वे ही करते हैं। यह मैंने सारे राष्ट्रों, सारे समाजोंकी बात कही। दोनों जगह अिसके अपवाद-रूप व्यक्ति तो होंगे ही। परन्तु कुल मिला कर देखा जाय तो भारतीय समाज प्रमादका शिकार है और पश्चिमी समाज अुद्योगी होते हुअे भी सुखके पीछे पड़ा हुआ है।"

मैंने पूछा : "तब हमारे कुछ सन्तोंने संसारको असार कह कर अुसके सम्बन्धोंको जो स्वार्थमय कहा है तथा परमेश्वरको सत्य मानकर अुसीसे प्रेम करनेकी जो बात कही है, अुसका क्या तात्पर्य है? मुझे तो लगता है कि यदि हम अैसा कहें कि यह संसार — यह जगत झूठा है, तो फिर कोअी भी प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती।"

नाथजी : "अैसा समझनेमें बड़ी भूल है। कुछ साधु-सन्तोंके अुपदेशके कारण लोग मानते हैं कि यह जगत बिलकुल झूठा है, सगे-सम्बन्धी सब झूठे हैं तथा काल्पनिक देवों और अुनके अलग अलग दिव्य स्थानोंके विषयमें श्रद्धा रखकर संसारके आवश्यक कर्तव्योंकी अुपेक्षा करते हैं। प्राचीन कालमें तो आश्रम-व्यवस्था होनेके कारण प्रत्येक मनुष्यको क्रमशः अेक अेक आश्रमके कर्तव्य पूरे करके आगे बढ़ना पड़ता था। अुससे स्वभावतः अुसकी अुन्नति होती थी। और अन्तमें अुसे संन्यास अथवा सेवावृत्ति धारण करके जीवन व्यतीत करना पड़ता था। अथवा योग्यतानुसार वह निर्वाण-प्राप्तिके लिअे कोअी साधना करता था। परन्तु आज सारी समाज-व्यवस्था टूट गअी है। अुसमें कोअी अर्थ ही नहीं रह गया है।"

मैं : "परन्तु, नाथजी, संसार झूठा है, यह बात तो सच है न? अैसा माननेमें अुन्होंने क्या गलती की? मुझे तो लगता है कि यह बात जिनकी समझमें नहीं आती है, वे बंधनसे कदापि मुक्त नहीं हो सकते।"

नाथजी : "हम अैसे वचन पढ़ते और सुनते आये हैं कि यह ससार असत्य है, ससार माया है। परन्तु अैसा लगता है कि अिन वचनोंका जो रुढ़ अर्थ हम समझते हैं अुस अर्थमें वे नही कहे गये हैं। संसारकी प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक घटना क्षणभगुर है, अिसलिअे वे दीर्घ काल तक टिक नही सकते। सुख कहो या दुःख—कोअी भी थोड़े समयका होता है। जगतकी किसी भी वस्तुका अेक ही रूप सदा कायम रहे, अैसा जगतका धर्म—नियम—नही है। कोअी भी वस्तु अिस जगतमें शाश्वत नही है। बाह्य वस्तुअें या हमारा शरीर, कोअी भी अविनाशी नही है। अिसलिअे 'संसार असत्य है' अिस वचनका अितना ही अर्थ होना चाहिये कि अैसी अशाश्वत बातों पर, जगत पर, अपने शरीर पर भी, सुखके हेतुसे किसीको भरोसा नही रखना चाहिये—किसीको अवलंबित नही रहना चाहिये। संसारको माया कहनेका यही अर्थ हो सकता है। हम ममत्वके कारण अशाश्वतको शाश्वत मानते हैं, यही हमारी भूल है। अिससे अधिक अर्थ अिस वचनमें नही है। संसार वास्तवमें यदि नही होता तो वह असत्य है, अैसा कहनेकी आवश्यकता ही पैदा नही होती। और संसार सचमुच नही है, यह प्रतीति किसीको हुअी हो अैसा किसीके वचनोंमें—ग्रन्थों परसे लगता नही। अिसलिअे अुन वचनोंका गलत अर्थ न समझकर संसारकी सच्ची स्थितिको रखते हुअे व्यवहार करना चाहिये।

"ससारकी प्रत्येक घटना निश्चित नियमोंके अनुसार होती है। अुन नियमोको हम अभी तक भलीभाति जानते नहीं। परन्तु मनुष्य योग्य विचारसे, अुचित कर्मसे, सयम-पुरुषार्थ आदिकी सहायतासे और सद्गुणोका आश्रय लेकर सुखी हो सकता है। जिस चित्तके द्वारा हमें सुख-दुःखका अनुभव होता है, अुसे मनुष्यको शुद्ध और पवित्र बनाना चाहिये। अपने सुखके खातिर बाह्य जगतका योग्य अुपयोग करनेके लिअे हमें अनेक शास्त्रो, विद्याओं और कलाओका ज्ञान होना चाहिये। अुसी तरह सुखके लिअे अुपयोगमें आनेवाली हमारी कर्मेन्द्रिया, ज्ञानेन्द्रिया, मन आदि सब नीरोग, स्वस्थ और शुद्ध होने चाहिये। किन बातोका, किन वस्तुओंका, कब और कितना अुपयोग करना चाहिये, यह निश्चित करनेवाला शुद्ध विवेक, मनोवृत्तियोंको रोकनेवाला सयम और निग्रह तथा दूसरे भी अनेक आवश्यक सद्गुण हममें होने चाहिये। अन्तमें मरनेके पहले हमें अिस जीवनमें कौनसा सर्वोच्च ध्येय साधना है, अन्तिम समाधान और प्रसन्नता हमें किस बातसे प्राप्त हो सकेगी आदि बातोका ज्ञान हमें होना चाहिये और अुस ध्येयकी सिद्धिके लिअे आवश्यक पुरुषार्थ भी हममें होना चाहिये। ये सब योग्यताये प्राप्त कर लें तो हम अिस ससारमें सुखी और कृतकृत्य हो सकते हैं। यह कृतकृत्यता संसारको असत्य मानकर चलनेसे प्राप्त नही हो सकती। मनुष्य विकारोंको जीत कर तथा सद्भावनाओंको शुद्ध और व्यापक बनाकर जीवन बिता सके तो कहा जा सकता है कि अुसे

जीवनमें सब कुछ मिल गया। अिस ढंगसे जीवन बितानेके लिअे जो भी प्रयत्न करना आवश्यक हो वह मनुष्यको करना चाहिये। अुससे घबरानेसे काम नहीं चल सकता। वैसे संसारको केवल असत्य मानकर भी मनुष्य कहां बन्धनसे छूट जाता है? खाना, पीना, देहकी रक्षाके लिअे आवश्यक सुख-सुविधा भोगना — अिन बातोंसे वह क्या बच पाता है? आज तक कभी बच पाया है? बहुत हुआ तो अुन्हें प्राप्त करनेके लिअे आवश्यक पुरुषार्थ, परिश्रम आदिका त्याग कोअी करता होगा। लेकिन अैसा करके अुसने क्या साधा? वस्तुका अुपभोग और अुपयोग तो किया जाय, परन्तु केवल अुसके निर्माण और रक्षाके लिअे आवश्यक पुरुषार्थ, विद्या – कला – परिश्रम आदिका ही त्याग किया जाय! अर्थात् अिन सब बातोंका भार दूसरों पर डालकर हम अुनके द्वारा मिलनेवाले सुख-सुविधाओंका लाभ अुठावें! संसारको असत्य मानकर यह सब लाभ अिस तरह अुठाते रहनेमें मानवताकी दृष्टिसे हमारा पतन है। मनुष्य गलत मान्यताके कारण, भ्रमके कारण, यह भारी दोष करता है। जिसे सारा संसार असत्य लगता है, अुसे अपनी सुख-सुविधायें सत्य कैसे लगती हैं? अुनकी आवश्यकता क्यों मालूम होती है? और यदि ये सब अुसे असत्य नहीं मालूम होती, तो अुनके लिअे आवश्यक परिश्रम, कष्ट आदिसे अुसे क्यों घबराना चाहिये? अतः परम्परासे चले आ रहे अैसे वचनों पर अिस प्रकार विश्वास — श्रद्धा — न कर हमें मानव-जीवन और जगतके विषयमें स्वयं

विचार करना चाहिये और अुस परसे अपने जीवनका ध्येय निश्चित करना चाहिये ।"

मैंने कहा, "नाथजी, यह तो मैं समझ गया। परन्तु अिस ससारको स्वार्थी क्यो कहा गया है? अिस बारेमें आपका क्या विचार है?"

नाथजी "ससारको पूरी तरह स्वार्थी समझनेकी बात मुझे स्वीकार नही है। कअी लोग अैसा समझते जरूर है। परन्तु क्या अुन्हें अिस बातका भान है कि ससारमें परमार्थवृत्ति — सेवावृत्ति आदि शुभ वृत्तिया भी है? संसारको स्वार्थी कहनेवाले साधु-सतो या ससारी मनुष्योसे पूछो कि 'तुम स्वार्थी कहकर जिसकी निन्दा करते हो अुसी ससारके क्या तुम फल नही हो? यदि ससार निरा स्वार्थी ही होता तो तुम्हारे जैसे परमार्थी — परायोके लिअे सद्भावना रखनेवाले लोग अुसमें कैसे पैदा होते? और विचार करनेमे मालूम होगा कि स्वार्थी ससारी लोगों पर ही तुम्हारा जीवन-निर्वाह चलता है।'

"तुम्ही विचार करो कि संसार केवल स्वार्थी ही होता तो माता-पिता अपने बालको पर अितना प्रेम कैसे करते? पति-पत्नी अेक-दूसरे पर अितना प्रेम रखकर अपना सर्वस्व निछावर करनेकी वृत्ति कैसे धारण करते? भाअी-भाअी अेक दूसरेके लिअे प्रेमसे अितना त्याग कैसे करते? मित्र आपसमें अेकरस बन कर कैसे रह सकते? देशके लिअे लोग अपने प्राण अर्पण करनेको कैसे तैयार होते? अुसी प्रकार दुःखियों और पीड़ितोंके लिअे दयाभावसे

आजीवन अपना सर्वस्व अर्पण करनेवाले लोग कहांसे मिलते? सचमुच मुझे तो अैसा लगता है कि प्रेम पर ही यह संसार टिका हुआ है और अुत्कर्षकी ओर बढ़ रहा है।

"और मान लो कि सारा संसार — हमारे सब सगे-सम्बन्धी निरे स्वार्थी हैं तो भी क्या हुआ? हमारा धर्म तो अुदात्त बुद्धिसे अुनकी सेवा करना और अुन पर प्रेम बरसानेका ही है न? हमारी अुन्नति अिसीमें है।

"अब मैं तुमसे अेक दूसरा प्रश्न पूछता हू। क्या संसारको स्वार्थी कहनेवाले साधु-संत और अन्य लोग परलोकके, वैकुण्ठके, स्वर्गके सुख भोगनेकी लालसासे ही ओश्वरकी भक्ति नही करते? बहुधा यही बात जाननेमें आयेगी। अिसमे भी स्वार्थ है। तब अुनकी भक्तिमें भी निःस्वार्थता कहां रही? अुलटे यह कहा जा सकता है कि अैसी भक्तिमें हमारी भावना व्याज-सहित अधिक सुख प्राप्त करनेकी होती है। क्या विचार करने पर अैसा ही नहीं लगता?

"यदि मेरी ये सारी बातें तुम्हे सत्य और विचारने जैसी लगें, तो अैसी किसी कल्पना या भावनाके पीछे न पड़कर विचारसे जो अुचित मालूम हो अुसीके लिअे अपना जीवन अर्पण करो। केवल अपने सुखकी कल्पनाको छोड़कर अुदात्त भावसे दूसरोके सुखका विचार करो। सेवा करनेकी पवित्र वृत्ति धारण करो, अुसका विकास करो और सच्चा कर्मयोग सिद्ध करो। अपने जीवनको प्रेममय बनाकर

अुन्नतिके मार्ग पर चलो। संसारको ही अपनी अुन्नतिका क्षेत्र मानो।"

मैंने पुनः विचार करके कहा: "नाथजी, मेरी तो अिस जगतमें कोअी वृत्ति ही नहीं है। मुझे लगता है कि जिसमें आनन्दकी प्राप्ति हो वही कार्य किया जाय और आनन्द भोगा जाय। संसारकी जिम्मेदारियां और कर्तव्य सिर पर हों तो आनन्दमें कैसे रहा जा सकता है?"

नाथजी: "तो अिस परसे यह मालूम होता है कि तुम जिम्मेदारियोंसे घबराते हो और केवल आनन्दकी अिच्छा रखते हो! परन्तु विचार करके देखो, हमारी भावना अैसी नहीं होनी चाहिये। हम आनन्दकी वृत्तिके गुलाम नहीं बनना चाहिये। किसी भी वृत्तिको हम जैसी बनायें वैसी ही वह बनती है। कर्तव्य-पालनमें ही हमें आनन्द अनुभव होना चाहिये। अुसमें आनन्द न मिले और कदाचित् दुःख भोगना पड़े, तो भी हमें अपना कर्तव्य नहीं छोड़ना चाहिये। क्योंकि कर्तव्य-पालनमें होनेवाला दुःख भी हमें अुन्नतिकी ओर ही ले जायगा। वह दुःख अपने भौतिक सुखकी आशासे सहन किया हुआ नहीं होना चाहिये। श्रम, सत्य और कर्तव्यके लिअे जितना आत्म-समर्पण तुमने किया होगा अुतनी ही तुम्हारी अुन्नति होगी। अिसके अलावा, जिसे तुम आनन्द कहते हो वह भी अेक प्रकारकी क्षणिक सुखात्मक वृत्ति ही है। अुससे तुम्हें सच्ची शांति या प्रसन्नता नहीं मिलेगी। अिस बातका विश्वास रखो कि बाह्य वस्तुओंसे, बाह्य स्थानोंसे, सुख

और आनन्द प्राप्त करनेकी वृत्ति तुम जितनी कम करोगे अुतनी ही सच्ची शान्ति तुम्हें अपने अन्तरमें प्राप्त होगी। अुसके लिअे अन्तनिष्ठ होकर चित्तको शुद्ध बनानेका प्रयत्न करते रहो। यह निश्चित है कि चित्तशुद्धि कर्तव्य और सात्त्विक कर्म करते रहनेसे ही होगी।

"और विचार करो कि क्या तुममें संसारकी वृत्ति नहीं है? और अुसके सुख भोगनेकी भी अिच्छा नहीं है? यदि ये दोनों बातें हों तब तो तुम्हारे कहनेका अितना ही अर्थ होगा कि तुम केवल जिम्मेदारियोंसे घबराते हो। अिसलिअे अधिक नहीं तो चार-पांच वर्ष तो तुम्हें घरमें ही रहना चाहिये। अपना कोअी स्वार्थ न देखते हुअे अुदात्त भावनासे केवल सेवा करना सीखो, और अपने भीतर सद्‌गुणोंका विकास करो। अिसके बाद आगेका मार्ग मैं तुम्हें बताअूगा।"

मैंने फिर पूछा: "यह सब तो मुझे मान्य है। आपकी बताअी हुअी सारी बातें मैं अपने आचरणमें अुतारूंगा। परन्तु अेक शंका और मेरे मनमें रह गअी है। आयु अल्प है और कार्य अितना विकट है! अैसी स्थितिमें यदि मैंने आपका लाभ आज ही नहीं अुठाया तो फिर आगे क्या होगा कौन जानता है? अैसा मौका कोअी बार बार आनेवाला है?"

नाथजी: "अिसकी तुम चिन्ता मत करो। जो मनुष्य अुन्नतिकी अिच्छा करता है, अुसे अनुकूल परिस्थिति सदा ही प्राप्त होती रहती है। आजका अपना कर्तव्य हम

पूरा कर ले तो बस है। तुम्हारी तीव्र अिच्छा थी अिसलिअे मेरा और तुम्हारा मिलाप हो गया। अैसा ही सदा योग मिल जाता है। मेरी यही कामना है कि तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी शुभ वृत्तियोंका विकास हो और तुम पूर्णताको प्राप्त करो।"

७

कला और मनुष्यत्व

अेक दिन नाथजीके साथ मेरी ललित कलाओंके विषयमें बातें हुअी। मैंने कहा: "क्या आपको अैसा नहीं लगता कि कलासे मनुष्यकी अुन्नति होती है? अुससे मनुष्यका विकास होता है, अितना तो सच है न?"

अुनका अुत्तर था: "कला जिस प्रसंग पर और जिन भावोंसे अुत्पन्न होती है, अुस प्रसंग और अुन भावोंको वह हमारे चित्तमें चिरस्थायी बनानेका प्रयत्न करती है; और यदि वह प्रसंग और भाव पवित्र हों तो अुनके स्मरणसे भी हमें कुछ बल प्राप्त होता है। अिस परसे यह कहना गलत नहीं होगा कि कला अुपयोगी सिद्ध हो सकती है। फिर भी अितना तो निश्चित है कि जब तक वह प्रसंग और वे भाव मनुष्यको पुरुषार्थ अर्थात् प्रत्यक्ष आचरणमें प्रवृत्त नहीं करते, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि अुसका कोअी खास परिणाम हुआ। अर्थात् कला प्रोत्साहक हो तो ही मनुष्यका अुत्कर्ष करनेमें सहायक

हो सकती है। कला प्रत्यक्ष जीवन पर शुभ परिणाम अुत्पन्न करे तो ही अुसका महत्त्व है। अुदाहरणके लिअे, हम अेक चित्रको ले। वह दयाभावसे पूर्ण है। अुसे मैं रोज देखता हूं; अुसके जैसे दूसरे चित्र बना भी सकता हूं। अुसके कारण मेरे मनमें कुछ भाव भी अुठते हैं। परन्तु जब तक दुनियामें प्रत्यक्ष वैसे प्रसग देखने पर मेरे मनमें दयाके भाव नही अुठते और दु खी मनुष्यकी प्रत्यक्ष सहायता करनेकी वृत्ति मेरे मनमें पैदा नही होती, तब तक अुस चित्रको देखकर या वैसे चित्र बना कर मेरे मनमे अुठे हुअे भावोका क्या अुपयोग और क्या मूल्य है? कवि और चित्रकार अधिकतर क्या अितनेसे ही सन्तोष नही मान लेते? अैसे मौकों पर सहायता करनेवाले लोग अुनमे से थोड़े ही मिलते हैं। यही स्थिति रसिकोंकी है। वे लोग केवल रस लेना ही जानते हैं। अिससे कला आज केवल अुपभोग्य वस्तु बन गअी है। अिसका दूसरा कोअी अुपयोग नही दिखाअी देता। अिसमें शका नही कि जब मनुष्य कलाको साध्य न मानकर प्रेरक और प्रोत्साहक साधनके रूपमें मानेगा, तब वह जरूर अुन्नतिप्रद बन जायगी। यह ध्यानमें रखो कि कोअी भी कला केवल साधन है; अुसका साध्य है अुससे अुत्पन्न होनेवाले सद्भावोंको प्रत्यक्ष कार्यका रूप देना। प्रत्यक्ष कार्यकी सिद्धिमें ही कलाकी सफलता मानी जानी चाहिये। मेरी यह मान्यता नही है कि कला छोड़ देनेकी चीज है। परन्तु मै अैसा भी नही मानता कि कलाका मानवके विकासके साथ अिससे अधिक कोअी सम्बन्ध है। दया, क्षमा

आदि गुणोंका जीवनमें जितना महत्त्व है, अतना केवल कलाका मुझे नहीं लगता।"

मैंने फिर पूछा: "आपका कहना मुझे ठीक मालूम होता है। परन्तु जो कला देवपूजा और देवताओंका महत्त्व बढ़ानेके निमित्तसे विकसित होती है, अुसके बारेमें आपका क्या मत है?"

"अुसकी भी अिसी दृष्टिसे जांच की जानी चाहिये। अुससे भी मानवका विकास होता है, अैसा मुझे नहीं दिखाओ देता। अिसके विपरीत, कुछ हद तक अुसमें मुझे मनुष्यका अज्ञान ही मालूम होता है। हम अपने भीतरकी वासनाओंका देवोंमें भी आरोपण करते हैं और वे वासनायें हमारे भीतरसे निकल गअी हैं अैसा मानकर दूसरी तरफ अुन्हींका पोषण करते हैं। हमें अपनी सारी वासनाओंको, भोग-वृत्तियोंको, सोच-विचार कर ज्ञानपूर्वक निकाल देना चाहिये। देवताके नाम पर या और किसीके नाम पर अुनका पोषण कभी नहीं करना चाहिये। समझ गये न?"

मैंने कहा: "आपकी बात मैं समझ गया। गुणोंके विकासमें ही मनुष्यका सच्चा विकास है। सद्गुणोंके अुत्कर्षसे ही हमारी वासनायें नष्ट होंगी। परन्तु अिन सब बातोंको समझकर अुनके अनुसार आचरण करनेके लिअे सदा प्रयत्न-शील रहना चाहिये।"

८

प्रत्यक्ष सेवा ही धर्म है

अेक दिन पूज्य नाथजीने कहा : "साधारण जन समाजके समक्ष अूचा तत्त्वज्ञान या वेदान्त रखनेकी आवश्यकता नही है। यह जिज्ञासु शोधकोंका विषय है। हम सब जो तत्त्वज्ञानके पीछे पड गये, अुसके हानिकारक परिणाम आये है। तत्त्वज्ञानसे लोग सुखकी अपेक्षा करनेवाले तो नही बने। अुलटे, तत्त्वज्ञानका आश्रय लेनेके कारण भ्रम, दंभ, प्रमाद, आलस्य आदि दुर्गुण ही समाजमें बढे है। बुद्धने कहा है अुसी तरह मुझे अिस विषयमे लगता है कि आत्मा है या नही है, वह अविनाशी है या नाशवान अथवा जगत अनन्त है या सान्त, अिस वाद-विवादमें किसीको भी पड़नेकी जरूरत नही है। हमारा शरीर नाशवान है यह तो हम अपने रोजके अनुभवसे जानते हें, अुसके परिणाम बाह्य जगतमें क्या होते हैं यह भी हम देखते हैं। अुस सब परसे प्रत्येक मनुष्यको यही विचार करना चाहिये कि मैं अपना कर्तव्य अैसे अुत्तम ढंगसे पूरा करूं, जिससे मेरे चित्तको शान्ति मिले। मुझे अैसे ही कार्य करनेमे मग्न रहना चाहिये, जिनसे अिस दृश्य जगतमे शान्ति बनी रहे और सुखकी वृद्धि हो। अिस प्रकार संपूर्ण जीवन बिता कर मृत्युके बाद जो भी हो अुसे भोगनेके लिअे हमे तैयार रहना चाहिये। अैसा विचार हम सब करने लगे तो अुससे हमारा कल्याण

होगा । साधारण जनसमाज असिसे ज्यादा गहरी बातोंको पचा नही सकता । अतः वह आचरण कर सके और आचरणके द्वारा अुन्नत बन सके, अैसे ही शब्दोंमें अुसे कुटुम्ब, समाज आदिके प्रति अपना कर्तव्य समझाना चाहिये । अुसके समक्ष अैसे ही विचार रखने चाहिये जिनसे ससारके लिअे अुसके मनमे प्रेम अुत्पन्न हो और ससारके कल्याणके लिअे अपना कर्तव्य पालन करनेकी वृत्ति पैदा हो ।

"लोगोके मनमें परलोकके बारेमे काल्पनिक आशाय अथवा भय पैदा करनेकी जरूरत नही । अीसा मसीहने जितना कहा है अुतना ही कहना बस है — 'जैसे व्यवहारकी आशा तू दूसरोंसे रखता है, वैसा ही व्यवहार तू दूसरोंके साथ कर' । असिके सिवा अन्य जो अनेक आशायें और भय है, अुनमे सत्य विचारका अंश नही है । असिलिअे वैसी कल्पनाओंसे समाजका कल्याण नही होता । समाजकी वर्तमान स्थिति कितनी दयाजनक है ! अपने सम्पर्कमें आनेवाले मनुष्योंके सुख-दुःखका विचार करना छोड कर हम देव-देवियोंकी काल्पनिक सृष्टि निर्माण करते है और अुनकी पूजा करते है ! सचमुच यह विचारहीन परम्पराका ही परिणाम है । परन्तु असि सबका कारण क्या है, असि पर भी कभी किसीने विचार किया है ? विचार करनेसे पता चलेगा कि प्रत्यक्ष जगतमें जिनके साथ हमारा सम्बन्ध होता है, अुनके साथ सद्भाव और प्रेमभावसे बरताव करनेकी शक्ति हममें नही है । हमने अपनी दिव्य कल्पनाओंसे जिन देव-देवियोंका निर्माण किया है, अुनकी हमारे मनको सन्तोष

[illegible] [illegible] साथ है। अैसे भी तुम हुँ अविचलित नहीं रहना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यका विकास होना चाहिये। अिसके बिना मुक्ति नहीं हो सकती। अब कोअी अैसा धर्मेतर कर्म सोचना चाहिये जिससे तुम्हें पूरे विकास साधनका अवकाश मिले। अैसे धर्मेतर कर्म [illegible] आयगा, तब अनासक्तिका विचार ही तुम्हारे मनमें कभी नहीं अुठेगा। तुम किसी भी संकोचके बिना यह कर्म करते रहोगे और अुसीसे तुम अपना मुक्ति पा लोगे।"

मेरा दूसरा प्रश्न था : "अैसा कर्म क्या धनोपार्जन करनेवाला होना ही चाहिये?"

"यह धनोपार्जन करनेवाला होना ही चाहिये, अैसा नियम नहीं है। किसी समय अुसका अैसा परिणाम न भी आवे। परन्तु निर्वाहके लिअे शुद्ध भावसे धन प्राप्त करनेमें भी दोष नहीं मानना चाहिये। बेशक, धन पर हमें प्रेम नहीं होना चाहिये, अुस पर हमें आसक्त नहीं होना चाहिये। परन्तु अुसके प्रति हमारे मनमें बैर नहीं हो सकता। जीवनमें अुसीको प्रधानता देकर धर्माधर्मका विचार न रखते हुअे हम धन प्राप्त करें, अुसका लोभ करें अथवा अुसके कारण गर्व करने लगें तो वह हमें अवश्य डुबा देगा। तुम्ही सोचो, क्या जीवन-निर्वाहके लिअे दुनियामें धनकी आवश्यकता नहीं है? अैसा कौन मनुष्य है, जो अुसकी थोड़ी भी मदद नहीं लेता? बड़े बड़े सन्तोंका भी कहना . कि शुद्ध मार्गसे धन अुपार्जन किया जाय और अुचित,

अुदात्त और निर्लोभ वृत्तिसे अुसका व्यय किया जाय। अिस तरह आचरण करनेवाला मनुष्य अुन्नत बनता जाता है। यह गृहस्थाश्रमका मुख्य धर्म है। अिसमें पुरुषार्थ, वैराग्य, जन-हितकी दृष्टि — सब कुछ है। जनसाधारणके लिअे यह कितना सरल परन्तु अमूल्य आदर्श है?"

मैंने दिनभर अिस बात पर विचार किया और शामको फिर अुनके पास जाकर पूछा. "सवेरे धर्मयुक्त कर्मके बारेमें आपने जो बात कही, अुसका क्या अर्थ है?"

नाथजी बोले · "प्राचीन कालमें वर्ण या कुलमें चले आये व्यवसायको स्वधर्म कहा जाता था और अुससे मनुष्यकी आजीविका चलती थी। चार वर्णोंकी व्यवस्था अुसकी सूचक थी। परंतु आज पुरानी सारी व्यवस्था टूट गअी है; और नअी व्यवस्थाकी अभी रचना नहीं हो पाअी है। आज तो अपनी वृत्ति, शक्ति और अपने संस्कारोंके अनुरूप कोअी समाजोपयोगी और समाजका कल्याण करनेवाला कर्म हमें खोज लेना चाहिये और अुसीको अपना स्वधर्म समझना चाहिये। वह न मिले तब तक परिवारमें परम्परासे चला आया धर्म करते रहना चाहिये। और अुसे करते हुअे धीरे धीरे अुससे अधिक योग्य और अुत्तम कार्य अपने लिअे खोजनेका प्रयत्न करना चाहिये। अिस बातका भी विचार करना चाहिये कि अपना वंशपरम्परागत धनोत्पादक कर्म समाजके लिअे बिलकुल अनावश्यक और घातक तो नहीं है? यदि वह अैसा न हो तो अुसे अपनी आजीविकाके साधनके रूपमें स्वीकार करना चाहिये। अिसके सिवा,

यदि अुस कर्मके पीछे शुद्ध भावना और शुभ अुद्देश्य हो, तो वह कभी तुम्हारा नुकसान नहीं कर सकता। अतः अिन बातोंका विचार करके तुम अपना कर्म निश्चित करो। और जब तक तुम्हारे स्वभावके अनुकूल कर्म तुम्हें न मिले, तब तक घरमें वंशपरम्परासे चला आया व्यवसाय करके अुसीसे अपनी अुन्नति साधनेका प्रयत्न करो।"

अिसके पश्चात् अुन्होंने मुझे महाभारतकी व्याध-गीताकी कथा सुनाकर अुसके आधार पर अपना मुद्दा समझाते हुअे कहा : "कर्म करते हुअे कर्मके पीछे रहे अुद्देश्य पर मुख्य भार देना चाहिये। और वह कर्म सामान्य नीति-धर्मसे रहित तो कभी नहीं होना चाहिये।"

मैंने कहा "नाथजी, आपकी बातें सुननेके बाद अब मैं बदल गया हूं। अब मुझे लगता है कि मैं बम्बअी जाकर रहूं और दूसरा कुछ अिस समय न किया जा सके तो भी कुटुम्बीजनोंकी यथाशक्ति सेवा करूं। अन्तमें मुझसे कुछ नहीं हुआ तो भी अितना सन्तोष तो रहेगा कि मैं अपने प्रियजनोंके बीच हूं। क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि मुझे देखकर मेरे छोटे भाअी-बहनों, माता-पिता और मित्रोंको आनन्द होता है। आपके सहवाससे वात्सल्यका महत्त्व मेरी समझमें आ गया है। अुससे मैं अपना थोड़ा-बहुत अुत्कर्ष साधनेका प्रयत्न अवश्य करूंगा।"

नाथजीने कहा : "ठीक है। तुम बम्बअी अवश्य जाओ। दीवाली पर ही चले जाओ, जिससे तुम्हें देखकर सबको आनन्द हो। अुत्सव या वार-त्योहारके अवसर पर

लड़का घर लौट आये तो घरके बड़े-बूढ़ोंको कितना आनन्द होता है!"

दूसरे ही दिन बम्बअी जानेका निश्चय करके मैं अुनके पाससे अुठा। मेरे मनका अेक निश्चय हो जानेसे मैं शान्त हो गया।

* * *

दूसरे दिन धनतेरस थी। सवेरे ही सब कामोंसे निबटकर मैं अुनके पास बैठा था। मैं शान्त हो गया, अिसका सन्तोष अुनके मुख पर स्पष्ट दिखाअी दे रहा था। वे बोले "नीलकण्ठ, तुम आज जाओगे न?"

मैंने कहा, "जी हां, आपने मुझे आज्ञा दी और जानेमें ही मेरा कल्याण है अैसा मुझे समझा दिया, अिसलिअे मैंने जानेका निश्चय कर लिया है।"

अुन्होंने कहा, "देखना, मेरी कही हुअी अेक-अेक बात ध्यानमें रखना। अुन सब पर विचार करना और अुन्हें अपने जीवनमें अुतारनेका प्रयत्न करना। मैं जानता हूं कि मुझे छोड़नेमें तुम्हें दुःख हो रहा है। किन्तु अिसीमें तुम्हारा कल्याण है, अिसीमें तुम्हारा अुत्कर्ष है। मेरे साथ रह कर तुम अपना कर्तव्य भूलो तो अुससे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। योग्य कर्म खोज निकालना। वही तुम्हारा धर्म है। अुसका पालन करनेका प्रयत्न करना। सत्कर्म करनेमें ही मनुष्यका विकास है।"

मैं बोला: "जी हां। लेकिन कौन जानता है हम फिर कब मिलेंगे?"

यदि तुम कर्मके पीछे शुद्ध भावना और शुभ अुद्देश है तो वह कभी तुम्हारा नुकसान नहीं कर सकता। अिस बातका विचार करके तुम अपना कर्म निश्चित करो। और जब जब तुम्हारे स्वभावके अनुकूल कर्म तुम्हें न मिले, तब तब परम धैर्यपूर्वक सतत आत्म-चिन्तन करके अुचित अपनी अुन्नति साधनेका प्रयत्न करो।"

अिसके पश्चात् अुन्होंने मुझे महाभारतकी व्याध-गीताकी कथा सुनाकर अुसके आधार पर अपना मुद्दा समझाते हुअे कहा : "कर्म करते हुअे कर्मके पीछे रहे अुद्देश पर मुख्य भार देना चाहिये। और यह कर्म कानून-नीति-धर्मसे रहित तो कभी नहीं होना चाहिये।"

मैंने कहा : "नाथजी, आपकी बातें सुननेके बाद अब मैं बदल गया हूं। अब मुझे लगता है कि मैं बम्बअी जाकर एक और दूसरा कुछ अिस समय न किया जा सके तो भी कुटुम्बीजनोंकी यथाशक्ति सेवा करूं। अन्तमें कुछ नहीं हुआ तो भी अितना सन्तोष तो रहेगा कि मैं अपने प्रियजनोंके बीच हूं। क्योंकि मेरा यह विश्वास है कि मुझे देखकर मेरे छोटे भाअी-बहनों, माता-पिता और मित्रोंको आनन्द होता है। आपके सहवाससे वात्सल्यका महत्त्व मेरी समझमें आ गया है। अुससे मैं अपना थोड़ा-बहुत अुत्कर्ष साधनेका प्रयत्न अवश्य करूंगा।"

नाथजीने कहा : "ठीक है। तुम बम्बअी अवश्य जाओ। दीवाली पर ही चले जाओ, जिससे तुम्हें देखकर सबको आनन्द हो। अुत्सव या वार-त्योहारके अवसर पर

लड़का घर लौट आये तो घरके बड़े-बूढ़ोंको कितना आनन्द होता है!"

दूसरे ही दिन बम्बअी जानेका निश्चय करके मैं अुनके पाससे अुठा। मेरे मनका अेक निश्चय हो जानेसे मैं शान्त हो गया।

* * *

दूसरे दिन धनतेरस थी। सवेरे ही सब कामोंसे निबटकर मैं अुनके पास बैठा था। मैं शान्त हो गया, अिसका सन्तोष अुनके मुख पर स्पष्ट दिखाअी दे रहा था। वे बोले "नीलकण्ठ, तुम आज जाओगे न?"

मैंने कहा, "जी हां, आपने मुझे आज्ञा दी और जानेमें ही मेरा कल्याण है अैसा मुझे समझा दिया, जिससे मैंने जानेका निश्चय कर लिया है।"

अुन्होंने कहा "देखना, मेरी कही हुअी अेक-अेक बात ध्यानमें रखना। अुन सब पर विचार करना और अुन्हें अपने जीवनमें अुतारनेका प्रयत्न करना। मैं जानता हूं कि मुझे छोड़नेमें तुम्हें दुख हो रहा है। किन्तु अिसीमें तुम्हारा कल्याण है, अिसीमें तुम्हारा अुत्कर्ष है। मेरे पास रह कर तुम अपना कर्तव्य भूलो तो अुसमें तुम्हारा कल्याण नहीं होगा। योग्य कर्म खोज निकालना। यही तुम्हारा धर्म है। अुसका पालन करनेका प्रयत्न करना। सत्कर्म करनेमें ही मनुष्यका विकास है।"

मैं बोला: "जी हां। लेकिन कौन जानता है हम फिर कब मिलेंगे?"

[illegible]

१०

[illegible] नाम पर अपव्यय

पूज्य नाथजी [illegible] पर (बम्बई) आये हुये थे। अेक दिन अुन्होंने पत्र लिखनेके लिये दवात-कलम और कागज मांगा। मैं सब चीजें ले आया और बोला: "लीजिये, यह पैड। जितने भी कागजका अुपयोग कीजिये।" पैड हाथमें लेकर अुन्होंने कहा: "अितने कागज! ये तो मेरे पास दो-तीन वर्ष चलेंगे। तुम जानते हो न, मैं कैसे कागजका अुपयोग करता हूं?"

अुन्होंने अुसमें से अेक कागज निकाल कर अुसके चार भाग किये और अेक पर लिखने लगे। मैं बोला: "यह क्या? अैसा कहीं लिखा जाता है? कागजकी अितनी किफायत किसलिये?"

नाथजीने कहा: "क्या चारों ओर काफी जगह छोड़ कर ही लिखना चाहिये? और पीछेका हिस्सा बिना

कारण कोरा छोड़ देना चाहिये? आवश्यकता न होने पर मैं अधिक कागज कैसे काममें ले सकता हूं? बेशक, आजकलकी पुस्तकोंमें अैसी पद्धति होती है। परन्तु अुस वजहसे पुस्तकें कितनी महंगी पडती हैं?"

मैंने कहा: "अिसमें गलत क्या है? क्या अिसमें सुन्दरता नहीं है? अिसके बिना तो पुस्तक हाथमें लेनेकी भी अिच्छा नहीं होगी। पुरानी पुस्तकें और पत्र देखिये, कैसे लिखे जाते थे?"

वे कहने लगे "तुम्हारी यह भावना गलत है। यह सही और जरूरी है कि लिखावट स्पष्ट, स्वच्छ और व्यवस्थित होनी चाहिये। लेकिन अुसमें व्यर्थका आडम्बर क्यों होना चाहिये और अुस कारणसे अुसे अधिक महंगी क्यों बनाना चाहिये? कोअी भी चीज सावधानीपूर्वक और आवश्यक मात्रामें ही काममें ली जानी चाहिये। अिस पर तुम विचार करो। अिसके सिवा, चीजें क्या बिना परिश्रम किये अुत्पन्न होती हैं? तब किसीका परिश्रम हम व्यर्थ कैसे नष्ट कर सकते हैं? जो चीज हमारे पास आवश्यकतासे अधिक हो या जिन चीजका हमारे लिये कोअी अुपयोग नहीं हो, वह हम दूसरोंको दे दें किन्तु व्यर्थ नष्ट न करें। अुसका दुरुपयोग न करें। हमें मनुष्यके प्रत्येक परिश्रमका विचार करके मितव्ययतापूर्वक अुसका अुपयोग करना चाहिये। अैसा करके ही हम अुसके श्रमके ऋणसे मुक्त हो सकते हैं। केवल पैसे देकर हम अैसे ऋणसे मुक्त नहीं हो सकते।"

निषेधका लोप करनेके लिअे अथवा स्वयं अिन सबसे परे है, यह दिखानेके लिअे अुन्होंने जान-बूझकर अैसा आचरण नहीं किया होगा। लेकिन प्रत्येक मनुष्यको भोगके समय राजा जनक ही क्यों याद आते हैं? ऋषि, मुनि, शुक, बुद्ध, महावीर जैसे त्यागियोंमें से किसीका स्मरण क्यों नहीं होता? हमारे देशमें अनेक ज्ञानी पुरुष हो गये हैं। परन्तु अुनमें से अेकने भी अलिप्त भावसे भोग भोगनेका अुपदेश नहीं किया है। हमारी अिस गलत मान्यताके कारण समाजमें अतिशय दंभ और पाखंड चलता है। कोअी कह दे कि अमुक सन्त राजयोगी है, फिर तो अुसके लिअे सारे भोग-विलास प्रस्तुत किये जाते हैं। समझमें नहीं आता कि अैसे पुरुषों पर लोगोंकी श्रद्धा कैसे जमती है। मुझे लगता है कि यह सब अन्ध-परम्परा है। अेकने कहा और दूसरेने कोअी विचार न करके अुसे मान लिया! लोकश्रद्धाके कारण चलनेवाले अिस दंभका विरोध कौन करे? और अैसे दंभी लोग काम क्या करते हैं? वे लोगोंकी प्रिय कामनाओंको केवल अपने कृपा-प्रसादसे सिद्ध कर देनेका ढोंग करते हैं! और जहां देखो वहां लोग अज्ञानके कारण अैसे ही ढोंगियोंके पीछे लगे दिखाअी देते हैं। कोअी अुनमें भिन्न मत प्रकट करता है तो अुसे नास्तिक या अैसा ही कुछ कह कर अुससे द्वेष किया जाता है। अैसा दंभ समाजमें आज ही नहीं चलता। संत तुकारामके समयमें भी अैसे दंभी लोग थे, अिसीलिअे अुन्होंने कहा है:

"आवडीच्या मते करितो भोजन ।
भोग नारायणें म्हणती केला ॥
अवघा देव म्हणें वेगळें तें काय ।
अर्थासाठी डोअी फोडूं पाहे ॥
लाजे कमंडलू धरिता भोपळा ।
आणीक थीगळा प्रावरण ॥
शाला गडवे धातुद्रव्यअिच्छा निती ।
नैश्वर बोलती अवघे मुगें ॥
तुका म्हणे तया देवा नाहीं भेटी ।
अैसे कल्पकोटी जन्म घेतां ॥"*

अैसे लोगोंके कारण समाजमें न केवल द
अज्ञान ही बढ़ता है, बल्कि अनके साथ अन्य,
भी वृद्धि होती है। अैसे ही लोगोंसे त्रस्त और
होकर सन्त तुकारामने कहा होगा :

"शिष्योपदेशाच्या जळो ज्ञानगोष्टी ।
हाणीं दृष्टिभेटी न हो त्यांची ॥

नाहीं मन्तचिह्न अुमटलें अंगीं ।
अुपदेशालागी पात्र झाला ॥
पोहों नेणें कासे लाविती आणिका ।
म्हणावे त्या मूर्खा काय आतां ॥
मिणले ते गेले मिणलियापाशीं ।
झाली त्या दोघांची अेक गति ॥
तुका म्हणे अहो देवा दीनानाथा ।
दरपण आता नको त्याचें ॥"*

समाजमें अैसे लोग हर युगमें पाये जाते हैं। जहां कम परिश्रमसे अधिक सुख-सुविधा प्राप्त करना संभव होता है वहीं दंभकी कल्पना निर्माण होती है। मनुष्य द्रव्य, भोग, मान्यता, प्रतिष्ठा आदि अुचित परिश्रम और सीधे मार्गसे प्राप्त करे तो अुसमें विशेष दोष नहीं माना जा सकता। अधिकसे अधिक हम अुसे लोभी, लालची, संसारमें आसक्त और महत्त्वाकांक्षी कहेंगे, परन्तु दंभी नहीं कहेंगे।

---

* आग लगे अैसे मुखलोलुप लोगोंकी ज्ञानवार्ताको। अुनके दर्शन मुझे कभी न हों। अुनके जीवनमें सन्तका अेक भी लक्षण नहीं दीखता, फिर भी वे अपनेको दूसरोंको अुपदेश देनेके अधिकारी मानते हैं। खुदको तैरना न आता हो फिर भी जो दूसरोंसे कहे कि मुझे पकड़े रहना, अैसे मूर्खसे क्या कहा जाय? डूबता हुआ आदमी जब दूसरे डूबतेके पास आता है तब दोनोंकी अेक ही गति होती है। तुकाराम कहते हैं कि हे दीनानाथ मुझे अैसे लोगोंका मुंह भी देखनेको न मिले!

अुसे जो कुछ चाहिये वह सब खुले रूपमें प्राप्त करनेका वह प्रयत्न करता है। अुसके लिअे वह प्रयत्न करता है, परन्तु ढोंग नही करता। मुफ्तमें किसीसे कोअी सुख-सुविधा प्राप्त करनेकी अिच्छा नहीं रखता। अुसके लिअे सदा प्रयत्नशील रहता है, परन्तु किसीके साथ छल-कपट अथवा धोखेबाजी नहीं करता। अपनी आवश्यकताकी हर वस्तु वह खुले रूपमें अपनी शक्ति, बुद्धि और समय खर्च करके प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है। परन्तु दंभी मनुष्य किसी भी तरहका पुरुषार्थ किये विना गलत रास्तेसे सुख-सुविधायें पानेका प्रयत्न करता है। अिससे अुसकी और समाजकी अधिक हानि होती है। अैसा दंभ केवल धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्रमें ही नहीं चलता, बल्कि समाजमें धन, प्रतिष्ठा, मान्यता, सत्ता आदि प्राप्त करनेके जो जो भी प्रकार हैं, अुन सबमें अेक या दूसरे रूपमें दंभ और धोखेबाजी चलती है। तुम जानते हो न कि आज सामाजिक और राष्ट्रीय कार्योंमें भी कितना दंभ चलता है? आज जो लोग समाजसेवक और राष्ट्रसेवक कहे जाते हैं, अुनमें भी अैसे आदमी हैं। जब तक समाजमें ज्ञान और चारित्र्यकी वृद्धि नहीं होती, तब तक अैसी बातें चलती रहेंगी। अतः प्रत्येक विचारशील मनुष्यका कर्तव्य है कि वह गलत कल्पना, मान्यता, भावना, आदर्श, तथा अन्धश्रद्धा और अज्ञानका यथाशक्ति नाश करनेका प्रयत्न करे। वह स्वयं सादगीमें रहे; परिश्रम करनेमें हीनता न माने और अिस विचारको दृढ़तासे पकड़े रहे कि सेवा कराना धर्म

नहीं, बल्कि सेवा करना हमारा धर्म है। तभी हम अपना और समाजका सुधार होनेकी आशा रख सकते हैं।"

अुसी शामको मैंने फिर यह बात अुनके सामने निकाली।

"नाथजी, आपने दोपहरमें जो बात कही, अुस परसे मेरे मनमें कुछ विचार और शंकायें अुठती हैं। आपने जिन लोगोंकी बात कही, वे त्याग और वैराग्य किसलिअे धारण करते हैं? क्या वे पहलेसे ही सुख-सुविधा, मान्यता, प्रतिष्ठा आदिकी आशा और अुद्देश्य रखकर त्याग और वैराग्यका आश्रय लेते हैं? मैं नहीं मानता कि वे अैसे हेतुसे ही यह सब करते होंगे। मुझे लगता है कि अुनकी वृत्ति और अुनका हेतु पहलेसे ही गलत नहीं रहता होगा। परन्तु लोग अुनके पतनका कारण बनते होंगे।"

नाथजी: "तुम्हारी बात सच है। सबकी वृत्ति मूलमें ही दंभ करनेकी अथवा लोगोंसे सुख-सुविधा या पूजा प्राप्त करनेकी नहीं होती। परन्तु अपने मनको अच्छी तरह समझे बिना या क्षणिक आवेशमें आकर अथवा अन्य किसी कारणसे वे त्यागी और विरक्त बन जाते हैं और अुस मार्गको अपनाते हैं। बादमें अनुकूल परिस्थिति, लोगोंका सद्भाव और मान्यता मिलते ही चित्तमें दबी हुई अुनकी पुरानी अिच्छायें और वासनायें पुनः जाग्रत होती हैं और अुनकी शाखायें फूटती हैं। कुछ लोग समाजके अज्ञान और अन्धश्रद्धाका लाभ अुठानेके लिअे अैसे गलत रास्ते लगे हुअे लोगोंमें मिल जाते हैं और हर तरहसे मान, प्रतिष्ठा तथा

१२

जीवन-सिद्धि

पूज्य नाथजी हमारे यहा आकर दो-तीन दिन रहनेवाले थे। अितनेमें अेक भाअीको पहलेसे वचन दे चुकनेके कारण वडताल जानेका मौका आया। दूसरे दिन सवेरे मैंने नाथजीसे कहा "आज शामको मुझे वडताल जाना पड़ेगा। परन्तु अब मुझे लगता है कि भाअीके साथ जानेकी बात स्वीकार करके मैं व्यर्थ ही बंध गया।"

नाथजी : "अिसमें क्या हुआ ? तुम्हें कुछ दिन बाहर घूमना हो तो घूम आओ।"

मैंने कहा "पहले तो आपने मुझसे कहा था कि अीश्वर हमारे अन्तरमें ही है और अुसे हमें अन्तरमें ढूढ़ना चाहिये। यह बात मेरे गले अुतर गअी है। अिसलिअे अैसे स्थान पर जानेकी अब मेरी अिच्छा नही रही। कुछ दिनके लिअे बम्बअीसे बाहर जानेको मिलेगा, थोड़ा हवा-पानी बदलेगा, अिसी विचारसे मैंने अुनके साथ जाना स्वीकार किया था। परन्तु अब जाना अच्छा नही लगता। फिर भी वचन दे चुका हू अिसलिअे जाअूगा।"

अिसके बाद अुनके सहवासमें आनेसे पहलेकी अपनी कुछ मान्यताओं और श्रद्धाके बारेमें मैंने नाथजीसे बात की। मैंने कहा: "नाथजी, अुस समय मुझे अैसा लगता था कि हिमालय या वैसे ही किसी विशेष स्थानमें परमात्मा रहता है और वहीं जानेसे हमें अुसकी प्राप्ति हो सकती

सुख-सुविधा प्राप्त करनेमे सफल होते हैं। अिसलिअे पूर्ण विचार किये बिना केवल क्षणिक आवेशमे आकर मनुष्यको किसी श्रेष्ठ कार्यमें नही लगना चाहिये। अैसे ही प्रसंगोंका विचार करके सन्त तुकाराम आग्रहपूर्वक कहते हैं :

"आशा हे समूळ खणोन काढावी।
तेव्हाचि गोसावी व्हावें तेणें॥
नाही तरी सुखे असावे संसारीं।
फजिती दुसरी करूं नये॥
आशा मारुनियां जयवंत व्हावें।
तेव्हांचि निघावे सर्वांतूनि॥
तुका म्हणे जरी योगाची तातडी।
आशेची बीबुडी करी आधी॥"*

अर्थात् योग्य रीतिसे संसारमे रहकर ही आशारहित बननेका प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु शक्तिसे बाहर जो मार्ग है अुसे अपनाकर कभी दंभ नही करना चाहिये।

---

* मनमे आशाको जड़मूलसे नष्ट करके ही मनुष्यको साधु बनना चाहिये। अैसा न हो सके तो योग्य रीतिसे संसारमें ही रहना चाहिये, परन्तु अपनी दोहरी फजीहत नहीं करनी चाहिये। आशाको नष्ट करके अुस पर विजय पानेके बाद ही सर्वस्वका त्याग करना चाहिये। तुकाराम कहते हैं कि अगर तुझे योगकी व्याकुलता हो, तो पहले आशाका अुच्छेद कर।

१२

जीवन-सिद्धि

पूज्य नाथजी हमारे यहा आकर दो-तीन दिन रहने-
ाले थे। अितनेमें अेक भाअीको पहलेसे वचन दे चुकनेके
ारण वड़ताल जानेका मौका आया। दूसरे दिन सवेरे मैंने
ाथजीसे कहा "आज शामको मुझे वडताल जाना पडेगा।
रन्तु अब मुझे लगता है कि भाअीके साथ जानेकी
ात स्वीकार करके मै व्यर्थ ही बंध गया।"

नाथजी : "अिसमें क्या हुआ? तुम्हे कुछ दिन बाहर
घूमना हो तो घूम आओ।"

मैंने कहा "पहले तो आपने मुझसे कहा था कि
अीश्वर हमारे अन्तरमें ही है और अुसे हमें अन्तरमें ढूढना
चाहिये। यह बात मेरे गले अुतर गअी है। अिसलिअे अैसे
स्थान पर जानेकी अब मेरी अिच्छा नही रही। कुछ दिनके
लिअे बम्बअीसे बाहर जानेको मिलेगा, थोड़ा हवा-पानी
बदलेगा, अिसी विचारसे मैंने अुनके साथ जाना स्वीकार
किया था। परन्तु अब जाना अच्छा नहीं लगता। फिर
भी वचन दे चुका [illegible] जाअूगा।"

[illegible]

[illegible] आनेसे पहलेकी अपनी
[illegible] मैंने नाथजीसे बात
[illegible] समय मुझे अैसा लगता
[illegible] विशेष स्थानमें परमात्मा
[illegible] अुसकी प्राप्ति हो सकती

सद्गुण — प्रेम, दया, क्षमा, शांति आदि — प्राप्त करने चाहिये । जब तक अुस दिशामें हमारा प्रयत्न न हो तब तक सारी बातें व्यर्थ हैं — भले हम हिमालय पर जाकर तपस्या करें या रामेश्वरकी तीर्थयात्रा करें ।

हम जिसे तीर्थ कहते हैं, वह मूलतः किसी साधु-संतके रहनेका स्थान होता है । अुनके जीवन-कालमें अुनके शील, चारित्र्य, सत्कर्मोके आचरण, धर्मप्रवृत्ति आदिके कारण वहाके वातावरणमें पवित्रता और शांति रहती है । अतः वह स्थान लोगोंको स्वाभाविक ही पवित्र मालूम होता है । परन्तु अैसे साधु-संतोंके अवसानके बाद अुन स्थानोंका महत्त्व बढ़ा दिया जाता है, जिसकी वजहसे वे मायाके स्थान बन जाते हैं ।"

मैंने कहा : "प्रत्येक संत या सम्प्रदायका स्थान संतके चले जानेके पश्चात् अैसा ही बन जाता है । आश्चर्य तो यह है कि वह अैसा क्यों बन जाता है ।"

नाथजी : "जब तक हम मनुष्य-स्वभावको पहचान नहीं सकते, तब तक हमें आश्चर्य होता है । देखो, पहले तो कोअी साधु या संत अुस स्थानमें रहता है; और वह लोगोंको नीति और सदाचारके मार्ग पर ले जानेका प्रयत्न करता है । अुसकी मृत्युके बाद अुसके अनुयायी या भक्त अपने गुरुकी महिमा बढ़ानेके लिअे अुस स्थान पर मंदिर, मूर्ति आदिकी स्थापना करते हैं । अिस बाहरी आडम्बरसे जनसमुदाय अुसकी ओर आकर्षित होता है । बादमें परम्परासे अुसे सम्प्रदाय अथवा पन्थका रूप प्राप्त

होने लगता है। अिसमें से जिन्हें भौतिक सुख, मान, प्रतिष्ठा, धन आदि प्राप्त होता है या प्राप्त करनेकी अिच्छा होती है, वे लोग अिस अुद्देश्यसे अुस स्थानका महत्त्व बढ़ाकर अुसे तीर्थका रूप देते हैं कि श्रद्धालु जनसमुदाय अधिकाधिक संख्यामें वहां आता रहे। सन्तके जीवन-कालमें केवल वैराग्यनिष्ठ और ज्ञानकी अिच्छा रखनेवाले लोग ही वहां आते हैं। परन्तु बादमें अुस स्थानमें बाह्य आडम्बर बढ़ानेके कारण और अनुयायियों द्वारा अुस सन्तके अद्‌भुत सामर्थ्यके विषयमें झूठी बातें प्रचलित हो जानेके कारण वहांके अुत्सवोंमें राग-रंग, मौज-मजा, प्रसाद, भोजन और अन्नकूटका बोलबाला रहता है। अिसके फलस्वरूप वहां आनेवालोंकी संख्या स्वभावतः बढ़ने लगती है। अुनमें मनौती माननेवाले, अपना माल बचनेवाले व्यापारी, चोरी करनेका मौका ढूंढनेवाले चोर, नाटक-खेल-तमाशा वगैरासे लोगोंका रंजन करके पैसा कमानेवाले, साधुत्वका ढोंग करके भोलेभाले लोगोंको अपने जालमें फंसानेवाले — अिस प्रकार अनेक हेतुओंसे आनेवाले अनेक प्रकारके लोग होते हैं। वे सब तीर्थकी महिमा बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं। तीर्थकी अिस झूठी महिमाके कारण भोले और अन्ध श्रद्धावाले लोग फंस जाते हैं। तीर्थ-सम्बन्धी श्रद्धा समाजमें परम्परासे चलती आती है। परन्तु वास्तवमें प्रथम सन्तके जीवन-कालमें जो स्थान पवित्र था, वह अुसके [illegible] जानेके बाद अनेक प्रकारके मोह, स्वार्थ और प्रपं[illegible] आडम्बरका भ्रष्ट स्थान बन जाता है। अैसी

सद्‌गुण — प्रेम, दया, क्षमा, शांति आदि — प्राप्त करने चाहिये। जब तक अुस दिशामें हमारा प्रयत्न न हो तब तक सारी बातें व्यर्थ हैं — भले हम हिमालय पर जाकर तपस्या करें या रामेश्वरकी तीर्थयात्रा करें।

हम जिसे तीर्थ कहते हैं, वह मूलतः किसी साधु-संतके रहनेका स्थान होता है। अुनके जीवन-कालमें अुनके शील, चारित्र्य, सत्कर्मोके आचरण, धर्मप्रवृत्ति आदिके कारण वहाके वातावरणमे पवित्रता और शांति रहती है। अतः वह स्थान लोगोंको स्वाभाविक ही पवित्र मालूम होता है। परन्तु अैसे साधु-संतोके अवसानके बाद अुन स्थानोंका महत्त्व बढा दिया जाता है, जिसकी वजहसे वे मायाके स्थान बन जाते हैं।"

मैंने कहा : "प्रत्येक संत या सम्प्रदायका स्थान संतके चले जानेके पश्चात् अैसा ही बन जाता है। आश्चर्य तो यह है कि वह अैसा क्यों बन जाता है।"

नाथजी "जब तक हम मनुष्य-स्वभावको पहचान नहीं सकते, तब तक हमें आश्चर्य होता है। देखो, पहले तो कोअी साधु या संत अुस स्थानमें रहता है; और वह लोगोंको नीति और सदाचारके मार्ग पर ले जानेका प्रयत्न करता है। अुसकी मृत्युके बाद अुसके अनुयायी या भक्त अपने गुरुकी महिमा बढानेके लिअे अुस स्थान पर मंदिर, मूर्ति आदिकी स्थापना करते हैं। अिस बाहरी आडम्बरसे जनसमुदाय अुसकी ओर आकर्षित होता है। बादमें परम्परासे अुसे सम्प्रदाय अथवा पन्थका रूप प्राप्त

होने लगता है। अिसमें से जिन्हें भौतिक सुख, मान, प्रतिष्ठा, धन आदि प्राप्त होता है या प्राप्त करनेकी अिच्छा होती है, वे लोग अिस अुद्देश्यसे अुस स्थानका महत्त्व बढ़ाकर अुसे तीर्थका रूप देते हैं कि श्रद्धालु जनसमुदाय अधिकाधिक सख्यामें वहा आता रहे। सन्तके जीवन-कालमें केवल वैराग्यनिष्ठ और ज्ञानकी अिच्छा रखनेवाले लोग ही वहा आते हैं। परन्तु बादमें अुस स्थानमें बाह्य आडम्बर बढ़ानेके कारण और अनुयायियो द्वारा अुस सन्तके अद्भुत सामर्थ्यके विषयमें झूठी बाते प्रचलित हो जानेके कारण वहाके अुत्सवोमें राग-रग, मौज-मजा, प्रसाद, भोजन और अन्नकूटका बोलबाला रहता है। अिसके फलस्वरूप वहा आनेवालोकी सख्या स्वभावत बढ़ने लगती है। अुनमें मनौती माननेवाले, अपना माल बेचनेवाले व्यापारी, चोरी करनेका मौका ढूढनेवाले चोर, नाटक-खेल-तमाशा वगैरासे लोगोका रजन करके पैसा कमानेवाले, साधुत्वका ढोग करके भोलेभाले लोगोंको अपने जालमें फसानेवाले —अिस प्रकार अनेक हेतुओंसे आनेवाले अनेक प्रकारके लोग होते हैं। वे सब तीर्थकी महिमा बढ़ानेका प्रयत्न करते हैं। तीर्थकी अिस झूठी महिमाके कारण भोले और अन्ध श्रद्धावाले लोग फंस जाते हैं। तीर्थ-सम्बन्धी श्रद्धा समाजमें परम्परासे चलती आती है। परन्तु वास्तवमें प्रथम सन्तके जीवन-कालमें जो स्थान पवित्र था, वह अुसके चले जानेके बाद अनेक प्रकारके मोह, स्वार्थ और प्रपंचके बाह्य आडम्बरका भ्रष्ट स्थान बन जाता है। अैसी

स्थितिमें सद्‌विचार, सदाचार और भक्ति वहां कैसे टिक सक्ती है ? अर्थात्, अुस स्थानमें सुविचार और शुद्ध भावनाओंका नाश हो चुका होता है और वह सामान्य स्थानोंसे अधिक भ्रष्ट हो गया होता है । अिस प्रकार अुसके पापकी परम्परा बढ़ी हुअी होती है और तीर्थ हमारे घरसे भी अधिक अशान्त और अपवित्र बना हुआ होता है ।"

अुसी शामको नाथजी वसअी गये । मैं स्टेशन तक अुन्हें पहुंचाने गया था । रास्तेमें मैंने अुनसे पूछा: "आप फिर कब आयेंगे ?"

अुन्होंने अुत्तर दिया "वहांका कार्य पूरा करके आअूंगा तो जरूर । लेकिन सोचता हूं कि यहां आकर करूंगा क्या ? मुझे कामके बिना कहीं रहना अच्छा नहीं लगता । यह मेरे स्वभावके विरुद्ध है ।"

मैंने कहा : "आपके परिचयसे मैं जान गया हूं कि आपका स्वभाव निकम्मा रहनेका नहीं है। परन्तु आपके सहवासकी मुझे बड़ी अिच्छा रहती है ।"

वे बोले : "प्रेम अैसी ही वस्तु है। मनुष्य पर प्रेम रखें तो भी अुसका वियोग सहना पड़ता है, और अुसके कारण दुःख होता है । अिसलिअे केवल धर्म पर ही हमेशा निष्ठा और प्रेम रखना चाहिये । और धर्म तो हमारे साथ ही रहता है ।"

मैं बोला · "सच है । भगवान बुद्धने भी अैसा ही कहा है । समय समय पर मुझे अनुभव होता है कि आप भगवान बुद्धके ही भाव व्यक्त करते हैं और अिससे अुन

महापुरुषके वचनों पर मेरी श्रद्धा बढ़ती जाती है। मुझे तो लगता है कि अत्यन्त सूक्ष्म विचारको और परमात्माके विषयमें निष्ठावान पुरुषोंकी वाणीमें समानता रहती है।'

नाथजी "ठीक है। परन्तु जब तुम इतना समझते हो तो अधीर क्यों रहते हो? मैं क्या इससे कुछ अधिक कहनेवाला हूं? फिर भी मैं तुमसे दूर नहीं हूं। यदि तुम सद्धर्मका सान्निध्य बनाये रखोगे तो मैं सदा तुम्हारे पास ही हूं। सद्धर्म पर निष्ठा रखोगे तो निश्चिन्त बनोगे।"

१४
निष्ठा और धैर्य

ही रहेंगे। हम जो भी सत्संकल्प करेंगे, बार-बार चिन्तन करके जिन संकल्पोंको दृढ़ करेंगे, वे अवश्य सफल होंगे। असके लिअे सन्मार्ग पर हमारी अटल निष्ठा होनी चाहिये। ध्येयके बारेमें हमरा निश्चय दृढ होना चाहिये। अैसा न करके केवल घबराने और व्याकुल होनसे अथवा निराश होकर बीचमें ही अपना मार्ग छोड़ देनेसे क्या लाभ होगा? धैर्य रखकर और आत्मनिष्ठ होकर हमें सत्यके मार्ग पर हमेशा चलते ही रहना चाहिये. सारे संकटों और कठिनाअियोंको पार करके -- अपने सब दोषोंको दूर करके हम अपना ध्येय सिद्ध करेंगे, अैसी श्रद्धा और अैसा विश्वास हमारे हृदयमें होना चाहिये। और यदि हमारी श्रद्धा, हमारी निष्ठा शुद्ध होगी तो असमें शका नही कि हम अपनी शुभेच्छाओंको व्यापक रूपमें सफल हुअी देखेंगे। निराश होनेका क्या कारण है? हमारा संकल्प सिद्ध हो तब तक हमें धैर्य रखना चाहिये। अपने विचारों, संकल्पों और निष्ठाको दिन-प्रतिदिन शुद्ध करते रहना चाहिये। हमारे संकल्पकी सिद्धि बाहर कहीसे होनेवाली नही है, परन्तु हमारे हृदयमेंसे ही होगी। अिन सब बातोंको समझकर सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। कभी घबराना नही चाहिये। अिसलिअे बिना कारण व्याकुल बनकर तुम अपने प्रयत्नमें शिथिल न बनो।"

नाथजीकी बात सुनकर मेरा हृदय धीरे-धीरे शान्त हो गया और मेरे मनमें अुत्साहका संचार होने लगा। अुनकी आज्ञा लेकर मैं अुनके पाससे अुठा।

१५

चित्तकी समता

अेक रातको कोअी बात निकलने पर पूज्य नाथजीने कहा : "मनुष्यको समय देखकर चलना चाहिये। अिसके लिअे हममें विवेक, समय-सूचकता, तारतम्य, प्रमादावधान, संयम, सहनशीलता आदि सद्‌गुण होने चाहिये। अिन सब गुणोंके होते हुअे भी यह समझ रखना चाहिये कि हम कितने ही सावधान रहकर और नियमित रूपमें क्यों न काम करें और प्रेम, अुदारता आदि सद्‌वृत्तियां हममें कितनी ही मात्रामें क्यों न हों, जीवनमें दुःखके प्रसंग आनेकी संभावना रहेगी ही। क्योंकि कितनी बार सुख-दुःख केवल परिस्थितियों और संयोगोंके परिणाम होते हैं। कभी-कभी हमारे अपने व्यवहारके साथ अुनका कोअी सम्बन्ध ही नहीं होता। हमारा व्यवहार अुनके लिअे जिम्मेदार नहीं होता, फिर भी अुनका परिणाम तो हमें भोगना ही पड़ता है। अैसे समय हमें विवेक और तारतम्य-बुद्धिसे काम लेना चाहिये और सहनशील बनकर दुःखकी तीव्रता कम करके चित्तकी समता कायम रखनी चाहिये। अिसी तरह कभी-कभी हमारा कोअी प्रयत्न और हमारी योग्यता न होने पर भी जीवनमें सुखके अवसर आ जाते हैं। अुस समय हमें सावधानीसे विचारपूर्वक आचरण करना चाहिये। दुःखके अवसरों पर अुद्विग्न न होकर तथा सुखके अवसरों पर

हर्षमग्न न होकर हमें विवेकसे अपने चित्तकी समता कायम रखनी चाहिये।

"जीवन सदा अेकसा नहीं रह सकता। परिस्थिति, संयोग, कार्यकी विविधता, कर्तव्यके कम-ज्यादा विकट प्रसंग, हमारा और दूसरोंका बुढापा, व्याधि, मृत्यु जैसी अवस्थायें; घरकी और बाहरकी कठिनाअियां; कभी जन्म-लग्न जैसे हमारे परिवारके आनन्द-अुत्सवके प्रसंग; कभी कठिन प्रवास तो कभी आराम, कभी मान-अपमानके सार्वजनिक अवसर; कभी सज्जनके साथ तो कभी दुर्जनके साथ मिलाप; कभी अपने मनकी तो कभी दूसरेके मनकी कमजोरी, कभी वस्तुओंकी विपुलता तो कभी अभाव; साथ ही अनावृष्टि, अतिवृष्टि, बाढ, महामारी, अकाल, भूकम्प, दगा-फसाद जैसे अकल्पित संकट, — सारांश यह कि कभी अिस तो कभी अुस सुख या दुःखका योग मानव-जीवनमें बना ही रहनेवाला है। अिन सबमें चित्तकी समता बनाये रखनेकी कला हस्तगत हो जाय तो समझना चाहिये कि जीवनमें हमने सब कुछ सिद्ध कर लिया।"

दृष्टि रखे और तदनुरूप प्रयत्न करता रहे, तो न तो अुसे सुखका नशा चढेगा और न दुःखकी तीव्रता अनुभव होगी। अुस अवसर पर अुसके चित्तमें चलनेवाला स्वकर्तव्यका विचार अुसे सावधान और जाग्रत रखेगा। अुसे बेभान नही होने देगा। कर्तव्यपालनके लिअे आवश्यक सद्‌गुणोंके विचार और आचरणसे अुसके चित्तमें सुख-दुःखके विषयमे स्वाभाविक ही समता बनी रहेगी। अैसा मनुष्य जीवनके प्रत्येक अच्छे-बुरे प्रसंग पर विवेक, तारतम्य आदि सद्‌गुणोंकी सहायतासे मानवता सिद्ध करेगा और सन्तोप अनुभव करेगा।

'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः' यह स्थिति केवल सुख-दुःखके अवसरोंको टालते रहनेसे अथवा अुनमे मग्न रहनेसे कभी सिद्ध नही हो सकती। क्योंकि जीवन अनेक प्रकारके संयोगो और प्रसंगोंसे भरा होता है। अुसमें सुख-दुःखके प्रसग अनिवार्य रूपसे आते ही हैं। अुनमें चित्तकी समानता कायम रखनेकी कला हमे हस्तगत करनी चाहिये। अतः अुच्च और पवित्र ध्येयके सिवा मनुष्यके अुद्धारका अन्य कोई अुपाय नही है।

लानी ही चाहिये, और न वैसा आग्रह ही रखो। जब सचमुच किसीका कोअी नुकसान न होता हो — नुकसान होनेकी संभावना न हो, तब दूसरेकी बात शान्तिसे सुन लेनी चाहिये । अैसे समय क्षमाकी या अुपेक्षाकी वृत्ति रखनी चाहिये । किस समय कैसा व्यवहार किया जाय, यह यदि अुसी समय समझमें न आये और तदनुरूप व्यवहार करना न आये, तो अच्छे ग्रन्थ पढ़ने और अच्छी बातें सुननेका लाभ क्या ? अब अिस क्षोभके समय दूसरा कोअी विचार न करके सब कुछ भूल जाओ और शान्ति धारण करो ।"

१८
सादगी और धर्माधर्मका विचार

बम्बअी, ५-७-१९२५

अेक रातको सोनेकी तैयारी करते समय मुझे याद आया कि पूज्य नाथजी आज बहुत थके हुअे होंगे । अिसलिअे मैंने अुनसे कहा : "आप बैठ जाअिये, मैं आपके सिरमें तेलकी मालिश कर दूं ।" अैसा कहकर मैं बादामके तेलकी बोतल ले आया । नाथजीने पूछा : "यह क्या ? यह तो कोअी दूसरा ही तेल मालूम होता है।" मैं बोला : "बादामका तेल है ।"

नाथजीने आश्चर्यसे कहा : "बादामका तेल? मेरे जैसेके लिअे अुसका क्या अुपयोग है?"

मैंने अुत्तर दिया "खोपरेके बजाय बादामका तेल दिमागको अधिक शांति और ठंडक देता है। अिसलिअे मैं खास तौर पर अुसे लाया हूं। अिसमें आपत्तिजनक क्या है?"

नाथजी "ठंडक और शांति ही चाहिये तो अरंडीके तेलका अुपयोग क्यों न किया जाय? अुसकी दुर्गन्ध आती है अितना ही न? परन्तु जिसे ठंडक ही चाहिये, अुससे अधिक सुखकी अिच्छा नहीं है, वह अरंडीके तेलकी दुर्गन्धसे क्यों घबराये? बादामकी कीमत और अुसके तेलकी कीमतका विचार किया जाय तो मैं नहीं मानता कि मेरे जैसा मनुष्य अुसका अुपयोग कर सकता है। सच पूछो तो किसी भी तरहका तेल लगानेकी मुझ आदत ही नहीं है। बचपनमें दीवालीके दो दिनोंमें तेलका थोड़ा स्पर्श शरीरको होता था। वह भी लाचारीमें, क्योंकि वह परम्परासे चला आया रिवाज था। बचपनमें अुससे बचा नहीं जा सकता था। जब मैं खूब व्यायाम करता था तब भी मैंने कभी शरीरको तेल नहीं लगाया। न मालिश की। क्योंकि ये सब बातें मुझे सुख-भोगकी मालूम होती थीं। गरीबोंको जब खानेके लिअे भी तेल नहीं मिलता, तब हम शरीरको अच्छा रखनेके लिअे, शरीरको चिकना-चुपड़ा बनानेके लिअे या अन्य अैसे कारणोंसे शरीर पर तेलकी मालिश कैसे कर सकते हैं? जीवनकी अैसी विचारसरणी और सादगीकी रुचि होनेसे यह बात मनमें ही कभी नहीं आअी। यही कारण है कि शरीर या माथे पर कभी तेल लगानेका

स्वाद जीवनमें नहीं आया। अुससे तुम सादगीका तेज ले आये! अब और हम गाड़ीमें बात करें और दूसरी ओर मोटरमें बैठ सामान लें, यह कैसे हो सकता है?"

मैंने कहा "आपका कहना ठीक है। परन्तु यह विचार भूल करना चाहिये। आप क्या कहते हैं? आप क्या किसी लालचसे जिसका अुपयोग करते हैं? सहज मिल गया जिसलिये जिसका अुपयोग कर लेते। आजतक आपने बहुत कष्ट भोगे हैं। अैसी वस्तुकी आपने कभी अिच्छा भी नहीं की। यह विचार आप कभी मनमें भी न लाजिये। लीजिये, मैं मालिश कर दूं।"

नायजी "अैसी बात क्यों कहते हो? आज तक सादगी और संयमका जीवन बितानेके बाद अब अुसे क्यों छोड़ा जाय? सादगी और संयमको जब जीवनका धर्म मान लिया है, तो अुस धर्मका पालन जीवनभर करना चाहिये। जो जीवनका धर्म निश्चित हो चुका है, वह अमुक स्थिति तक ही धर्म है और अुसके बाद धर्म नहीं है — यह कैसे कहा जा सकता है? मनुष्य अमुक समय तक कष्ट अुठाये, व्रत और सदाचारका पालन करे, संयम रखे तथा अन्य लोगोंकी तुलनामें थोड़ा विचारी बने और बादमें अिन सबका फल भोगे अर्थात् सादगीका जीवन छोड़ दे और देहसुख भोगकर पुण्य नष्ट करता रहे! अिसे क्या धर्म कहा जायगा? केवल देहसुखके रूपमें सदाचारका फल भोगनेकी अिच्छा जिसके मनमें हो, अुसकी निष्ठा सदाचार पर है अैसा कहा जा सकता है? विचारी मनुष्य

अैसे व्यक्तिको सदाचारी नहीं मानता। जो मनुष्य सादगी और सदाचारको ही जीवनव्यापी धर्मका लक्षण मानता है, वह सदाचार और संयममें कभी विचलित नहीं होगा। वह विचार और आचरणके विषयमें सदा जाग्रत और दृढ रहेगा। जब मैं यह जानता हूं कि मनुष्यकी लालसासे — वैभव विलासकी वस्तुओंका अुपभोग करनेकी अिच्छासे ही समाजमें अितनी अशान्ति और गरीबी फैली है, तब वैभवकी अुन वस्तुओंके किसी कारण अनायास मिल जाने पर मैं अुनका अुपयोग कैसे कर सकता हूं? यदि मैं विचारी हूं और किसी प्रयत्नसे धीरे-धीरे मेरी सद्वृत्तियां विकसित हुआी हों, तो सदाचार और सादगी मेरा स्वभाव ही बन जाना चाहिये। अिस तरह शरीर-सुख भोगनेका संस्कार ही मेरे मनमें न रहना चाहिये। अब तुम समझ गये न?

"अिसके अलावा, स्वभावके विरुद्ध मनुष्यमें थोड़ा भी संस्कार न हो तो वह अुस संस्कारके अनुसार कभी आचरण कर ही नहीं सकता। यदि वह अैसा करे तो समझना चाहिये कि वह अभी अनुकूल संयोग मिलने पर अपनी गुप्त और क्षुद्र वासनाओंका पोषण कर रहा है।"

नाथजीकी अिस बातके बाद कुछ कहनेको नहीं रह गया। अिसलिअे मैं अरंडीका तेल लेकर अुनके सिर पर मलने लगा। पर भी अुन्हें बरदाश्त नहीं हुआ। वे बोले, "तेल मैं स्वयं ही मल लूं तो ठीक होगा। जब कोअी कठिनाअी नहीं है तो मैं स्वयं ही यह काम क्यों न कर लूं? शरीर बिलकुल अस्वस्थ हो और हम कुछ कर न सकें,

[illegible] है। [illegible] है। [illegible]

मैंने कहा : “आपकी बात तो अच्छी तरह समझा [illegible] है। फिर भी [illegible] है। [illegible] और [illegible] विरुद्ध [illegible] [illegible] भी ठीक हो।”

बापूजी : “सबको [illegible] विवेकपूर्वक [illegible] कर्तव्योंका पालन करते रहना चाहिये। और यह विचार भी करते रहना चाहिये कि हम जो कर्म करते हैं वे विवेकयुक्त हैं या अविवेकयुक्त। विवेकयुक्त कर्म हमारी अुन्नति और विकास कर सकते हैं। लेकिन वे ही कर्म यदि केवल पूर्वजन्मसे प्राप्त हुअे मानसिक संस्कारोंके कारण होते हों तो अुनसे अुन्नति होगी, अैसा निश्चयके साथ नहीं कहा जा सकता। चित्तको शुद्ध करके विवेकयुक्त आचरण करनेमें ही सच्चा विकास है, वही सदाचार है। और सदाचार ही मानवधर्म है।

“शरीर प्रत्यक्ष कार्य करनेका साधन है। ये कार्य विवेकयुक्त न हों तो हमारे विचारोंमें और आचरणमें असंगति अवश्य रहेगी। अिसलिअे शरीरको विवेकके अधीन रखना चाहिये। प्रवृत्तिके दो भाग हैं : अेक वाणी और दूसरा आचरण। दोनोंमें कभी असंगति नहीं होनी चाहिये। परन्तु बहुत बार असंगति आ जाती है। हम अच्छे अच्छे वचन बोलते हैं, परन्तु हमारा आचरण अुनके विरुद्ध होता

है। अिसका कारण यह है कि अच्छे वचन हमारे जीवनसे — अनुभवमें — निकले हुअे नहीं होते, दूसरोंके वचनोंके रूपमें हम अुन्हें पढ़ते या सुनते हैं और बादमें अुन्हींको हम बोलते हैं। अुन्हें बोलते रहनेसे हमें अैसा भास होता है कि हम सज्जन हैं, दूसरोंको भी यह भास होता है, और अुसके कारण मिलनेवाले बाहरी मान-सम्मान और प्रतिष्ठा परसे कुछ समय बाद वह भास ही हमें अपनी सच्ची श्रेष्ठ अवस्था मालूम होने लगता है। परन्तु हमारा आचरण वैसा नहीं होता, क्योंकि अच्छे वचनोंके अनुसार आचरण होनेके लिअे विवेक, संयम, दृढ़ता, धर्मनिष्ठा आदि सद्गुण आवश्यक होते हैं। वचन बोलना तो आसान होता है, परन्तु आचरण कष्टसाध्य होता है। अिस परसे यह कहा जा सकता है कि चित्त और शरीर दोनोंका कार्य जहां विवेकयुक्त और सुसंगत होता है, वहीं धर्म और सदाचार रहते हैं।

"हमारे समाजमें कहीं कहीं यह मान्यता है कि पूर्णावस्थाको पहुंचा हुआ सन्त चाहे जैसा आचरण कर सकता है। अर्थात् अुसके लिअे किसी भी तरहका विधि-निषेध नहीं है। साधारण लोगोंके सदाचारके नियम या धर्म अुस पर लागू नहीं किये जा सकते। यह सब धर्मोंने कहे हैं — आदि आदि। परन्तु मेरी रायमें यह सब निरी भ्रामक कल्पना है, भ्रामक ही नहीं बल्कि खतरनाक भी है। सदाचारका जो मूल धर्म है वह कभी छोड़ा नहीं जा सकता। ज्ञानेश्वर, अेकनाथ, रामदास, कबीर,

नानक आदि सन्तोंका धर्म आरंभसे अन्त तक सदाचार-युक्त ही था। वह कभी बदला नहीं। अुनका जीवन अन्त तक अत्यन्त शुद्ध और पवित्र बना रहा। अुनके विचारों और आचरणमें सदा मेल होता था। यह मेल अुनका स्वभाव बन गया था। अुनके जीवनकी हर बात धर्ममय थी। अैसा स्वभाव बन जानेके बाद — जीवन ही पूर्णतः धर्ममय बन जानेके बाद — जीवन और धर्म अलग अलग नहीं रह जाते। जीवन ही धर्म और धर्म ही जीवन बन जाता है। अैसी स्थिति हो जानेके बाद अुसमें अुन्हें विशेषता न मालूम हो तो कोअी आश्चर्यकी बात नहीं है। अैसा जीवन बनाना कष्टसाध्य है। परन्तु जो मनुष्य अुसके लिअे निरन्तर प्रयत्न करता है, अुसका जीवन अैसा बन जाता है। और, बन जानेके बाद वह स्वाभाविक हो जाता है। अतः हमें सदा प्रयत्नशील और विवेकी रहकर अपने विचारों और आचरणमें अेकता लानी चाहिये और सदा सदाचारका आग्रह रखना चाहिये। संयमी और पुरुषार्थी बननेका यही अेक मार्ग है।"

मैंने पूछा "संयम और भोग ये दोनों यदि किन्हीं अवस्थायें हों तो कोअी स्वच्छंदी मनुष्य पूछ सकता है, 'धर्मका ही आचरण क्यों किया जाय? क्या अधर्म भी किसकी सहज और नियमबद्ध स्थिति नहीं है?' मुझे स्वयं तो अैसा नहीं लगता। आपकी बात मैं समझा गया हूं, अिसलिअे मेरे मनमें यह प्रश्न नहीं अुठता। किन्तु कोअी स्वच्छन्दी मनुष्य कहे [illegible]

हमें निरुत्तर कर देता है । अुस समय मनका समाधान किस तरह किया जाय, यह हमारी समझमें नहीं आता । अतः अिसी मौके पर अिसका विचार कर लिया जाय तो ठीक होगा ।"

नाथजी "अैसे मनुष्यसे यही कहा जा सकता है कि आपको जैसा ठीक लगे वैसा आप मानें, परन्तु जिस अटल नियमसे सृष्टि चलती है, अुसका क्रम ही अिस प्रकारका है कि हम सब विकासकी दिशामें आगे बढ़ें। आप असत्य आचरणका, स्वच्छन्द व्यवहारका निश्चय कर लें तो भी आप लम्बे समय तक अैसा आचरण नहीं कर सकेंगे । और यदि दूसरे भी आपके साथ वैसा ही व्यवहार करें तो आपको अपना जीवन चलाना असंभव हो जायगा । मनुष्य कभी कभी स्वार्थवश होकर असत्यका आचरण करता है अथवा स्वच्छन्दी बन जाता है, अिसका कारण कभी अुसका अधैर्य, कभी लालच, कभी लोभ, कभी मत्सर और कभी अहंकार होता है । अैसे प्रसंगोंको छोड दें तो सदा असत्यका ही आचरण करना मनुष्यका स्वभाव नहीं है । और अैसा वह कभी बन भी नहीं सकेगा । वृत्तियोंको अधर्मसे धर्मकी दिशामें ले जानेकी कला मालूम न होनेके कारण कभी कभी वह अविवेकसे या अनजानमें गलत तत्त्वज्ञान निर्माण करनेका प्रयत्न करे तो भी अुस पर वह टिका नहीं रह सकता। सभी लोग अुसके साथ स्वच्छन्द व्यवहार करने लगें तो अुसे कैसा लगेगा ? क्या वह कहेगा कि सबको स्वच्छन्द व्यवहार करना चाहिये ?

कोओी मनुष्य यदि खुले आम कहे कि अपने लाभके लिअे कपट और विश्वासघात करनेमें कोओी हर्ज नहीं, तो अुस पर कौन विश्वास करेगा? और यदि अुस पर कोओी विश्वास ही न रखे तो वह कपट किनके साथ करेगा? किसके साथ विश्वासघात करेगा? अैसी स्थितिमें हम अुसीसे पूछें कि हम सबको यदि व्यवस्थित और सरल जीवन बिताना हो तो अुनके लिअे आप क्या पसन्द करेंगे? वह क्या अुत्तर देगा — धर्म-नियम या स्वच्छन्दता?

असत्य, अधर्म और स्वच्छन्दताका आचरण अेक व्यक्ति भी दीर्घ काल तक नहीं कर सकता; क्योंकि हमारा जीवन सामुदायिक है। विश्वासके बिना समुदाय चल नहीं सकता। सत्य और प्रामाणिकताके बिना विश्वासका निर्माण नहीं हो सकता, न वह टिक सकता है। अधर्मसे हमारे सारे व्यवहार बन्द हो जायंगे और जीवन चलना ही असंभव हो जायगा। अिस विषयमें अितना लम्बा और सूक्ष्म विचार करना भी आवश्यक नहीं है। क्योंकि तुम कहते हो वैसा कोओी स्वच्छन्दी मनुष्य अिस जगत्में नहीं मिलेगा। किसी 'वाद' के जोशमें कोओी अपनी अधर्मवृत्तिके दोषको सौम्य बतानेके लिअे भले अुतने समयके लिअे वैसा कहे, परन्तु अैसे क्षणिक प्रसंगोंको छोड़ कर अुसके व्यवहारका निरीक्षण किया जाय तो वह हमारे जैसा ही धर्म और सदाचारको महत्त्व देनेवाला जान पड़ेगा। वह अपने बालकको स्वच्छन्दी नहीं बनने देगा। स्वच्छन्दी नौकरको अपने घरमें नहीं रखेगा; अुसके भाओी,

मित्र, सगे-सम्बन्धी कोअी भी स्वच्छन्दी अथवा अधर्मी हो तो वह अुन्हें बरदाश्त नहीं करेगा। वैसा सम्बन्ध वह किसीके भी साथ रखता नहीं होगा, और अैसे किसी व्यक्ति पर विश्वास भी नहीं करता होगा। अुसके साथ तो सब लोग सत्य, प्रामाणिकता, अुदारता और प्रेमसे व्यवहार करें यही वह चाहता होगा। अितना ही नहीं, अैसा अुसका आग्रह भी होगा। अिसका कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्यके मनमें मानवधर्मकी स्थापना सदाके लिअे हो चुकी है। अब हम सब मानवतामें सुखी होनेकी अिच्छा करते हैं केवल अिन्द्रियजन्य सुखसे सुखी होनेकी स्थिति हमारी आज नहीं है। हम मानवीय मन प्राप्त हुआ है। अिसलिअे हम बौद्धिक और मानसिक आनन्दकी अिच्छा करते हैं। बुद्धिको अुन्नत और मनको सन्तोष प्रदान करे अैसे सुखको हम पसन्द करते हैं। अन्य सुखोंकी अपेक्षा अैसे सुखको हम श्रेष्ठ मानते हैं। हमारी अधर्म-वृत्ति बिलकुल अनुचित नहीं है, अैसा सिद्ध करनेका प्रयत्न भी कोअी स्वच्छन्दी मनुष्य अपने बौद्धिक समाधानके लिअे ही करता है। दूसरे लोग हमसे प्रेम करें, हम पर विश्वास रखें, हमें मान-सम्मान दें, हमें अच्छा कहें और जिस प्रकार सद्भावसे हम सुख प्राप्त कर — यह अिच्छा ही बतलाती है कि मनुष्य मानवधर्मसे प्राप्त होनेवाले सुखका भूखा है। अिस सुखको वह महत्त्व देता है। बल्कि [illegible] सुख प्राप्त करनेका अुसका प्रयत्न जारी है। काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर आदिके दूषित [illegible]

स्वभावत: जागता रहकर कोअी मनुष्य दूसरोंके मनकी शान्ति और सुखकी परवाह नहीं करता, अैसा मालूम हो तो भी समझना चाहिये कि वह अुसके जीवनकी आकस्मिक घटना अथवा शुद्ध मनोविकारका आवेग है। वृत्तियोंका सन्तुलन तो बैठाना अैसा आदमी कभी मर्यादासे बाहर जाकर स्वच्छंदी व्यवहार करे तो भी वह अुसका स्वभाव नहीं है। अुसमें अुसे अपनी तात्कालिक वृत्तिको शान्त करनेका सुख मिलता हो तो भी अुससे वह कभी तृप्तिका अनुभव नहीं कर सकता। क्योंकि अुसके हृदयमें जिस धर्मकी स्थापना हो गअी है अुसका अुसे सदा भान न रहे तो भी वह धर्म स्वयं अुसे ये बात सिखाता है। विषयासक्ति, अज्ञान और मानसिक रोगग्रस्तताके कारण वह किसी मौके पर मनका सन्तुलन कायम न रख सके तो भी अुनके वह सदाके लिअ स्वच्छंदी या अधर्मी नहीं बन सकता हमें अब अिस स्थितिसे ही आगे बढना चाहिये; पी लौटना सभव नहीं है। अिस मार्गमे हम समय समय पर गिरे तो भी अुस गिरनेका अर्थ पीछे लौटना नहीं है, अथवा गिरना धर्म या पुरुषार्थ नहीं माना जा सकता। यह धर्म मनुष्यमें स्पष्ट रूपसे प्रकट हो चुका है, अैसा हमारे अपने, दूसरोंके और सज्जनोंके जीवन परसे हमें मालूम हो जाता है। हमारे हृदयमें विकारके संस्कार कितने ही दृढ़ क्यों न हो गये हों, फिर भी हम सब विकासके नैसर्गिक क्रममें आगे बढ़ रहे हैं। हम जो चाहे कहें, परन्तु अुस क्रमसे हम छूट नहीं सकते। विकारोंका

बल कितना ही प्रचण्ड क्यों न हो तो भी अुसे मर्यादामें रखनेवाली विकासकी गति मन्द किन्तु स्थिर रूपमें जारी ही रहती है।"

मैंने पूछा, "नाथजी, अिसका कारण मनुष्य-जातिने निरन्तर चिंतन और दृढ संकल्पसे जो संस्कार बना लिया है, वही है न?"

नाथजी "मनुष्य नैसर्गिक क्रम या अीश्वरीय नियमसे अिस चिन्तन और अिस संकल्प पर आया है। अिसी क्रमसे अिस मार्गमें जो आगे बढे हैं, अुन्हें हम महापुरुष — सन्त कहते हैं। वह अुनका स्वभाव ही बन गया था। अुनका वह स्वभाव ही क्या मानव-जातिका धर्म नहीं है? विकारोंके साथ संघर्ष करके अन्तमें अुन्हें दबाकर धर्मसाधन किये बिना हमारा काम नहीं चलेगा। यदि हम अिस संघर्ष — जिस लडाअीका अन्त जल्दी लाना चाहते हों तो हमें विकारोंका पोषण नहीं करना चाहिये। चित्तमें स्वच्छन्दताको घुसने नहीं देना चाहिये। अज्ञानसे विकारोंका पोषण करनेका अर्थ केवल अितना ही होगा कि झगड़ा कुछ समय तक अधिक चलेगा। परन्तु अिसमें थोड़ी भी शंका नहीं कि अन्तमें विजय मानवताकी ही होगी। कोअी मनुष्य कितना ही क्रूर और अन्यायी क्यों न हो, अुसे भी दयालु और न्यायी कहलानेमें गौरवका अनुभव होता है। अिस रहस्य परसे यह समझना चाहिये कि अुसके हृदयमें भी मानवताकी मन्द ज्योति अवश्य जलती है।

हमारे हिन्दी प्रकाशन

पुस्तक	मूल्य
अस्पृश्यता	०–३–०
अहिंसक समाजवादकी ओर	२–०–०
आरोग्यकी कुंजी	०–७–०
खुराककी कमी और खेती	२–८–०
गांधीजीकी संक्षिप्त आत्मकथा	१–८–०
गोखले — मेरे राजनैतिक गुरु	१–०–०
गोसेवा	१–८–०
दिल्ली-डायरी	३–०–०
नअी तालीमकी ओर	१–०–०
बालपोथी	०–३–०
बापूके पत्र — १. आश्रमकी बहनोंको	१–४–०
बापूके पत्र मीराके नाम	४–०–०
बापूके पत्र — २: सरदार वल्लभभाअीके नाम	३–८–०
बुनियादी शिक्षा	१–८–०
भाषावार प्रान्त	०–४–०
रचनात्मक कार्यक्रम	०–६–०
रामनाम	०–१०–०
राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी	१–८–०
वर्ण-व्यवस्था	१–८–०
विद्यार्थियोंसे	२–०–०
शिक्षाका माध्यम	०–४–०
शिक्षाकी समस्या	३–०–०
सच्ची शिक्षा	२–८–०
सत्याग्रह आश्रमका अितिहास	१–४–०
सर्वोदय	२–८–०
हमारे गांवोंका पुनर्निर्माण	१–८–०
हरिजनसेवकोंके लिअे	०–६–०
राष्ट्रभाषाका सवाल	०–६–०
भूदान-यज्ञ	१–४–०
विवेक और साधना	४–०–०
अेक धर्मयुद्ध	०–१२–०